"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्शः एक अनुशीलन"

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ के हिन्दी विभाग में
मास्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि
हेतु प्रस्तुत

लघु शोध–प्रबन्ध

BABASAHEB BHIMRAO AMBEDKAR UNIVERSITY
LUCKNOW
प्रज्ञा शील करुणा
ESTABLISHED 1996

शोध–निर्देशक
डॉ0 शिवशंकर यादव
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग

शोधार्थी
अनीता
पंजीयन क्रमांक.: 876 / 14
हिन्दी विभाग

हिन्दी विभाग
भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ–226025
2020

माता–पिता

एवं

शिक्षकगण को समर्पित

<u>घोषणा–पत्र</u>

मैं, **अनीता** यह घोषणा करती हूँ कि **"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्शः एक अनुशीलन"** प्रस्तुत लघु शोध–प्रबंध मेरे द्वारा संग्रहित तथ्यों पर आधारित है तथा मास्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत यह लघु शोध–प्रबंध मेरा मौलिक कार्य है। इसे अंशतः या पूर्णतः इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य संस्थान में किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है। यह शोध कार्य मैंने **डॉ0 शिवशंकर यादव,** सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ के निर्देशन व मार्गदर्शन में पूरा किया है।

मैं घोषणा करती हूँ कि इस शोध कार्य को पूरा करने में मैंने विश्वविद्यालय के शोध संबंधित सभी नियमों का पालन किया है। मैं यह भी घोषणा करती हूँ कि यह शोध कार्य पूर्णतः साहित्यिक चोरी से मुक्त है।

Anita

दिनांक : 20.10.2020

शोधार्थी

अनीता
पंजीयन क्रमांक : 876/14
हिन्दी विभाग,
भाषा एवं साहित्य विद्यापीठ
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय,
विद्या विहार, रायबरेली रोड, लखनऊ

CERTIFICATE

This is to certify that the M.Phil. Dissertation titled **"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श: एक अनुशीलन"** submitted by **Ms. Anita** is an original research work and has not been previously submitted in part or full for the award of any other degree or diploma to this or any other university.

The M.Phil. Dissertation submitted to Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow satisfies all the requirements as stipulated in the Master of Philosophy (M.Phil.) Regulations (2016) as amended in 2019 and it is fit for submission and evaluation for the award of the degree of Master of Philosophy of the University.

Date: 20.10.2020

Supervisor

Head of the Department

प्रस्तावना

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य एवं वृद्ध विमर्श का बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। साहित्य समाज का दर्पण है। आज साहित्य इस वाक्य को पूरी तरीके से सार्थक कर रहा है। हिन्दी साहित्य में विभिन्न विमर्शों के साथ–साथ वृद्ध विमर्श की भी गूंज सुनाई देती है। वृद्ध विमर्श बुजुर्गों को केन्द्र में रखते हुए समाज, साहित्य और संस्कृति की नई व्याख्या करने वाला विमर्श है। वृद्धों की समस्याओं पर बात करने की अत्यधिक आवश्यकता है ताकि बुजुर्गों को समाज में अपनी स्थिति अनुपयोगी न प्रतीत हो, उन्हें दोयम दर्जे का न समझा जाये। वृद्ध विमर्श वस्तुतः सामाजिक सम्बन्धों को इन बदली हुई परिस्थितियों में नए ढंग से समझने की जरूरत पर बल देता है।

वर्तमान समय में हम युवा पीढ़ी और वृद्ध पीढ़ी के बीच दिन–प्रतिदिन बढ़ती खाँई को देख सकते हैं। जिन माता–पिता ने अपने बच्चों के नन्हें हाथों को पकड़कर चलना सिखाया था। जिन होठों पर कभी लोरिया थीं अब उन पर सिर्फ खामोशिया हैं। जिन माता–पिता के चेहरे पर ईश्वर देखा जाता था। मां के चरणों में स्वर्ग दिखाई देता था, लेकिन अब एक रिश्ता सीढ़ी की तरह हो गया है। जिस पर पाँव रखकर लोग आगे निकल जाते हैं।

मेरे लघु शोध–प्रबंध का शीर्षक **"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्शः एक अनुशीलन"** है। जिसके पाँच अध्याय विभाजन किए गए हैं। **प्रथम अध्याय 'हिन्दी साहित्य : वृद्ध विमर्श'** है। जिसके प्रथम रवंड में वृद्ध विमर्श के अर्थ एवं स्वरूप का वर्णन किया गया है। द्वितीय खंड में हिन्दी साहित्य एवं वृद्ध विमर्श का अन्तः सम्बन्ध रेखांकित किया गया है और तृतीय खंड में हिन्दी साहित्य मे वृद्ध विमर्श के स्वरूप विकास का विस्तृत वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय **"हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श के विविध आयाम"** है। जिसमें वृद्ध विमर्श के विविध आयामों का वर्णन करते हुए, वृद्ध विमर्श के सामाजिक, पारिवारिक और आधुनिक परिवेश का विश्लेषण किया गया है।

शोध–प्रबन्ध के तृतीय अध्याय **"हिन्दी कथा साहित्य एवं वृद्ध विमर्श"** में हिन्दी साहित्य और वृद्ध विमर्श के बीच के सम्बन्ध को दिखाया गया है। प्रथम खंड में हिन्दी कहानियों में वृद्ध विमर्श और द्वितीय खंड में हिन्दी उपन्यासों में वृद्ध विमर्श का विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय **"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श : एक अनुशीलन"** है। जिसमें स्वतन्त्रता के पश्चात् वृद्ध विमर्श से सम्बन्धित कहानियों और उपन्यासों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

पंचम अध्याय 'उपसंहार' में सम्पूर्ण अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों की विवेचना की गयी है।

यह शोध कार्य करने का निर्णय मैंने इसलिए लिया कि हम देख सकते हैं कि समाज में वृद्धों की स्थिति दिन–प्रतिदिन सोचनीय होती जा रही है। ऐसे क्या कारण है जिनकी वजह से वृद्ध अपने आप को अकेला महसूस करते हैं। हिन्दी कथा साहित्य में वृद्धों की समस्याओं को प्रखरता के साथ उठाया गया है और उसके क्या समाधान हो सकते हैं, इसको भी रेखांकित किया गया है।

सर्वप्रथम मैं अपने शोध निर्देशक आदरणीय **डॉ० शिवशंकर यादव सर** का हार्दिक आभार और कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने हर कदम पर मेरा मार्गदर्शन किया। जिनकी छत्रछाया में मेरा यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। सर से सदैव सकारात्मक दृष्टिकोण प्राप्त होता है जो निरन्तर कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। जिस प्रकार कच्ची मिट्टी गीली होती है, उसे हम जो भी आकार देना चाहे आसानी से दे सकते हैं। ठीक इसी प्रकार सर ने विषय निर्धारण से लेकर कार्य सम्पन्न होने तक हर कदम पर मेरा मागदर्शन किया। यह शोध प्रबन्ध उन्हीं के आशीष और मार्गदर्शन का परिणाम है। इसी कड़ी में मैं विभागाध्यक्ष **आदरणीय डॉ. सर्वेश कुमार सिंह सर** के प्रति विशेष रूप से आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके आशीर्वाद से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका। विभाग के अन्य शिक्षक आदरणीय **डॉ० बलजीत श्रीवास्तव सर , डॉ० नमिता जैसल मैम** और **डॉ० प्रीति राय मैम** के प्रति भी हार्दिक आभार और कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

जिस प्रकार किसी नाव को मंजिल तक पहुंचने के लिए कई सारी लहरों का सामना करना पड़ता है ठीक उसी प्रकार मनुष्य को भी अपने जीवन में कई सारे उतारों और चढ़ावों को देखना पड़ता है। ऐसे विपरीत परिस्थितियों में भी जो हमारी ढाल बनकर खड़े रहते है वो हैं हमारे माता–पिता। मैं अपने पिता जो हमारे बीच नहीं है **स्वर्गीय श्री जियालाल** और माता **श्रीमती प्रेमा जी** का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। जिनकी वजह से आज मेरा अस्तित्व है। साथ ही साथ बहन पूजा और भाई विशाल का बहुत–बहुत आभार जिन्होंने हर कदम पर मेरा साथ दिया। इसी कड़ी में मैं **किशनलाल पन्ना अंकल जी** का बहुत–बहुत धन्यवाद करती हूँ, जिन्होंने मेरा भरपूर सहयोग किया। जिनके बिना यह शोध कार्य सम्पन्न हो पाना असंभव था।

जीवन के सफर में कुछ मित्र ऐसे होते हैं जो कदम से कदम मिलाकर चलते हैं। जिनके सहयोग से आने वाली समस्याओं को आसानी से पार किया जा सकता है। इस कड़ी में मैं अपनी मित्र **दीप्ती यादव** का बहुत आभार व्यक्त करती हूँ। जिन्होंने मुझे सदैव प्रोत्साहित किया। इसी के साथ उन सभी लोगों का धन्यवाद जिनसे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा, सहयोग एवं प्रोत्साहन मिला।

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अध्याय	विवरण	पेज नं.
प्रथम अध्याय	**हिंदी साहित्य : वृद्ध विमर्श**	**1–18**
1.	वृद्ध विमर्श : अर्थ एवं स्वरूप	1
2.	हिंदी साहित्य एवं वृद्ध विमर्श का अन्तः संबन्ध	6
3.	हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श का स्वरूप विकास	9
द्वितीय अध्याय	**हिंदी साहित्य में वृद्ध विमर्श के विविध आयाम**	**19–27**
1.	वृद्ध विमर्श का सामाजिक परिवेश	19
2.	वृद्ध विमर्श का पारिवारिक परिवेश	22
3.	वृद्ध विमर्श का आधुनिक परिवेश	24
तृतीय अध्याय	**हिंदी कथा साहित्य एवं वृद्ध विमर्श**	**28–37**
1.	हिंदी कहानी में वृद्ध विमर्श	29
2.	हिंदी उपन्यासों में वृद्ध विमर्श	34
चतुर्थ अध्याय	**स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श : एक अनुशीलन**	**38–70**
	उपसंहार	**71–79**
	संदर्भ ग्रंथ सूची	**80–81**

प्रथम अध्याय

हिन्दी साहित्य : वृद्ध विमर्श

प्रथम अध्याय
हिन्दी साहित्य : वृद्ध विमर्श

हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श, बाल विमर्श के साथ–साथ वृद्ध विमर्श पर भी बात की जा रही है। हिन्दी में वृद्धों से सम्बन्धित कई कहानियाँ और उपन्यास हमारे सामने मौजूद हैं। जिनके माधम से हम वृद्धों की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक स्थिति को समझ सकते हैं। साथ ही साथ बुजुर्गों को किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है इसको भलि–भाँति समझा जा सकता है। इसके साथ–साथ साहित्य में सिर्फ समस्याओं को उजागर ही नहीं किया बल्कि इसका क्या समाधान हो सकता है। हम उन समस्याओं से कैसे निजात पा सकते हैं। इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

(क) वृद्ध विमर्श : अर्थ एवं स्वरूप –

वृद्ध विमर्श बुजुर्गों को केन्द्र में रखकर साहित्य, समाज और संस्कृति की नई व्याख्या करने वाला विमर्श है। मौजूदा हालात को देखते हुए, वृद्धों की समस्याओं पर बात करने की आवश्यकता और भी अधिक बढ़ गयी है। वृद्ध विमर्श सामाजिक सम्बन्धों को इन बदली हुयी परिस्थितियों में नये ढ़ंग से समझने की जरूरत पर बल देता है।

सामान्य शब्दों में जीवन के परवर्ती काल को हम वृद्धावस्था से अभिहित कर सकते हैं। वैज्ञानिकों ने वृद्धावस्था को परिभाषित करने के दो नियम निर्धारित किए हैं– कालक्रमिक और वैज्ञानिक। कालक्रमिक के आधार पर हम कह सकते हैं कि जो समय व्यक्ति त्यतीत कर लेता है या एक कालक्रम के अनुसार एक निश्चित क्रम में जीवन जीता है उसे वृद्धावस्था कहते हैं। वैज्ञानिक नियम के आधार पर कहा जा सकता है कि जब शरीर के ढाँचे में या कार्यप्रणाली में परिवर्तन आने लगता है या एक उम्र के पश्चात् शरीर ढलने लगता है और कई प्रकार की बीमारियां घेर लेती

हैं। कई शारीरिक, मानसिक परिवर्तन होते हैं तो इसे हम वृद्धावस्था का सूचक मानते हैं।

"विश्व के प्रत्येक कोने में करोड़ों बुजुर्ग जीवन की एक लम्बी यात्रा तय कर ऐसे पड़ाव पर पहुँचते हैं, जहाँ ठहराव है। नदी की तरह उनके जीवन में प्रवाह तो नहीं पर कहीं कुछ गहरा है जहाँ उसका साथी अकेलापन है और केवल अकेलापन।"[1]

ऐसे कौन से कारण हैं, जहाँ बुजुर्ग जीवन से निराश होता है। अपने अकेलेपन पर दुखी होता है। जहाँ परिवार में पहले उसका भरपूर सम्मान होता था, वही वृद्धावस्था आते ही उसका साथी अकेलापन है। संयुक्त परिवार में किसी हद तक वृद्ध सुरक्षित थे परन्तु एकाकी परिवार में उनके अकेलेपन की समस्या और भी अधिक बढ़ जाती है। परिवार के रहते हुए भी उन्हें अकेले जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ता है। सुमन वाजपेई बुजुर्गों के सम्बन्ध में लिखती हैं– "एक समय था जब घर के बड़े बुजुर्गों को परिवार पर बोझ नहीं बल्कि मार्गदर्शक समझा जाता था। उनके अनुभवों से हम बहुत कुछ सीखते थे पर आज स्थिति बहुत बदल चुकी है।[2] इससे ज्यादा घृणित मानसिकता और कोई दूसरी हो ही नहीं सकती कि जब हम अपने बुजुर्गों को वो प्यार नहीं देते जिसके वो पात्र हैं। उनकी समस्याओं पर बात होना आज के समय में और भी अधिक आवश्यक हो गया है। यह तो वृद्धों का एक पक्ष है इसका दूसरा पक्ष यह है कि कई बार ऐसा होता है कि हमारे बुजुर्ग रूढ़ियों, आडम्बरों और पुरानी परम्पराओं को पकड़े रहते हैं। उसको छोड़ने के लिए बिल्कुल भी तैयार नहीं होते। वृद्ध जनों की इस मानसिकता को भी समझने की जरूरत है।

वृद्ध पुरातन मान्यताओं को जकड़े रहने के कारण नई धारणाओं को स्वीकार ही नहीं कर पाते। रूढ़ियों, आडम्बरों को अपने जीवन का हिस्सा समझने लग जाते हैं। परन्तु इसके बावजूद भी बुजुर्गों की इन मनोदशाओं को बहुत ही सहजता के साथ समझने की आवश्यकता है। बुजुर्गों की इन मनोदशाओं का मनोवैज्ञानिक कारण भी है और यह कारण है पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक।

परिवार से ही समाज का निर्माण होता है और जो परिवार को एक रूप प्रदान करते हैं वो घर के बुजुर्ग। आज उनको ही लोग हीन भावना से देखने लगे हैं। जो घर परिवार की नींव होते है। कोई भी बिल्डिंग जो देखने में सुन्दर लगती है यकीनन उसको बनाने से पहले उसकी नींव को बनाया गया होगा। ठीक उसी प्रकार हमारे बुजुर्ग परिवार की वो नींव हैं जिस पर पूरा परिवार टिका है।

परन्तु आज भौतिक जगत में विडम्बना इस बात की है कि वर्तमान पीढ़ी वृद्ध पीढ़ी को नीच दृश्टि से देखती है। उनसे बातचीत करना भी पसन्द नहीं करते। उनको अपने ऊपर बोझ समझते हैं या उनको हमेशा के लिए अपने से दूर कर देते हैं। आज स्थिति इस हद तक गिर गई है कि बुजुर्ग वृद्धाश्रम में जीवन जीने के लिए मजबूर हैं।

"वैश्वीकरण ने हमें इस कदर प्रभावित किया है कि पाश्चात्य जीवन प्रणाली और एकल परिवार को ही सब कुछ मान बैठे हैं। सच्चाई यह है कि जिन बुजुर्गों ने हमें अपनी उँगली पकड़ा कर हमारे नन्हें से हाथों को थामकर हमें चलना सिखाया उन्हीं को आज दुत्कार और नकार रहे हैं।"[3]

आज विज्ञान ने दूरियों को तो कम कर दिया है। दूसरे देशों के लोग किसी और ग्रह के निवासी नहीं लगते काश दिलों की ये दूरियाँ भी दूर हो पाती। भूमंडलीकरण के युग में वृद्धों की समस्यायें भी निरन्तर तीव्र गति से बढ़ती जा रही हैं। इसके पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक मनोवैज्ञानिक आदि विभिन्न कारण हैं।

ऐसे समय में आवश्यकता है वृद्धों को सही तरीके से समझने की। उनके प्रति सही दृष्टिकोण अपनाने की, उनके प्रति प्रीत, प्यार, नम्रता, सहनशीलता वाला व्यवहार अपनाने की। वैश्वीकरण के इस युग में वृद्धों को बहुत ही हीन दृष्टि से देखा जा रहा है। बड़े से घर में उनके लिए छोटी सी भी जगह नहीं रह गयी है। उन्हें मजबूरी में वृद्धाश्रमों में जीवन यापन करने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। वृद्धाश्रमों की बढ़ती हुई संख्या इस बात का जीवन्त प्रमाण है कि वृद्धों की समाज में क्या स्थिति हैं। उन्हें किस दर्जे से देखा जा रहा है। खुदगर्जियाँ और लालसायें इस कद्र हावी हो जाती हैं कि बूढ़े माता–पिता को भी दुत्कार कर घर से निकाल

दिया जाता है। फिर जहन में यही ख्याल आता है कि– जिस बूढ़ी माँ को दुत्कार कर तूने घर से निकाला है। उसी की दुआयें हैं कि तेरे हाथ में निवाला है।

आज साइंस, टेक्नॉलाजी में तो हमने बहुत तरक्की कर ली। सड़के तो बहुत चौड़ी कर ली लेकिन हमारे सोच और दिमाग बहुत छोटे हैं। आज हम आसमान, चाँद, सितारों पर तो पहुँच गए। ऊँची–ऊँची इमारते तो बनवा ली लेकिन इस भागम–भाग में हम अपने बुजुर्गों को भूल गए। उनसे बात करना भी गँवारा नहीं समझते। बदलती हुई परिस्थितियों में वृद्धों की समस्यायें भी तीव्र गति से बढ़ रही हैं। सच्चाई तो यह है कि वृद्धावस्था जीवन की संध्या है यानि डूबते हुए सूर्य के समान है और यही जीवन की सच्चाई भी है कि इस धरती पर जिसका भी जन्म हुआ है उन सब को एक न एक दिन वृद्ध अवश्य होना है। इस पर हमारा कोई भी जोर नहीं चलेगा क्योंकि यही जीवन का शाश्वत क्रम है जो निरन्तर चलता आया है और चलता रहेगा। इस संदर्भ में मैथिलिशरण गुप्त ने बहुत ही दुःख के साथ लिखा है–

"अब वे वासर बीत गए,

मन तो भरा–भरा है लेकिन
तन के सब रस रीत गए,
चमक छोड़ चौमासे बीत,
कंवल छोड़कर शीत गए,
लेकर मधु की ऊष्मा सारी,
मेरे मन के पीट गए,
अब तो कावल गूंज बची है,
जीवन के सब गीत गए,
इस राम जाने जीवन में
हम हारे या जीत गए।"[4]

बुजुर्गों को समाज में बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। बुजुर्गों की समस्यायें नित्य प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। भारतीय परम्परा के अनुसार बुजुर्गों की जिम्मेदारी परिवार के सदस्यों की मानी जाती है। परन्तु वर्तमान समय में धीरे–धीरे ये जिम्मेदारी वृद्धाश्रम की ओर अग्रसित हो रही है। धीरे–धीरे यह एक चिंता का विषय बनता जा रहा है। कि पूरे परिवार का वहन उठाने वाला पूरे घर की देखभाल करने वाला व्यक्ति जब असहाय हो जाता है तो उसको परिवार से किनारे कर दिया जाता है। हिन्दी कथा साहित्य में ऐसे न जाने कितने उदाहरण मिल जायेगें कि परिवार का भरण पोषण करने वाला व्यक्ति ही बेबसी की जिंदगी जीने के लिए मजबूर है। ऊषा प्रियंवदा की वापसी कहानी इसी घटना को उद्घाटित करती हुई प्रतीत होती है। वृद्धों को बहुत ही दोयम दर्जे का समझा जा रहा है। उन्हें दूसरों के ऊपर निर्भर रहकर जीवन यापन करने वाला समझा जाता है। जब तक हम उनकी समस्याओं को नहीं समझेगें, तब तक हम उनके दुख–दर्द को महसूस नहीं कर सकते। वृद्धों के लिए हमारे दिलों में प्रीत, प्यार, नम्रता वाला व्यवहार होना चाहिए।

"सिमोन ने विश्व भर के विभिन्न समाजों में वृद्धावस्था से सम्बन्धित रूढ़ियों और वृद्धों की दशा तथा उनके प्रति व्यवहार का अलग–अलग दृष्टियों से अध्ययन किया। उन्होंने यह भी देखा कि इन वरिष्ठ नागरिकों की शारीरिक और मानसिक क्षमताओं तथा इच्छाओं, आकांक्षाओं और सपनों की दशा और दिशा क्या होती है।"[5]

वृद्ध विमर्श बुजुर्गों को केन्द्र में रखते हुए समाज, साहित्य और संस्कृति की नई व्याख्या करने वाला विमर्श है। वृद्धों की समस्याओं पर बात करने की अत्यधिक आवश्यकता है ताकि बुजुर्गों को समाज में अपनी स्थिति अनुपयोगी न प्रतीत हो, उन्हें दोयम दर्जे का न समझा जाये। वृद्धविमर्श वस्तुतः सामाजिक सम्बन्धों को इन बदली हुई परिस्थितियों में नए ढंग से समझने की जरूरत पर बल देता है।

(ख) **हिन्दी साहित्य एवं वृद्ध विमर्श का अन्तः सम्बन्ध–**

हिन्दी साहित्य एवं वृद्ध विमर्श का बहुत ही गहरा अन्तंसम्बन्ध है। साहित्य समाज का दर्पण है, यह समाज की विसंगतियों को उजागर करता है। ऐसी कई सारी कहानियाँ और उपन्यास साहित्य में मौजूद हैं जिसमें हम बुजुर्गों की समस्याओं को देख सकते हैं। किस प्रकार समाज में उनको उपेक्षित समझा जाता है। इसका उदाहरण हम प्रेमचन्द की कहानी बूढ़ी काकी में भी देख सकते हैं कि किस प्रकार से प्रेमचन्द ने वृद्धों की समस्याओं को कहानी के माध्यम से उजागर किया है। मनुष्य की स्वार्थी लालसाओं का चित्रण किया है कि प्रलोभन और स्वार्थ के चक्कर में मानव किस कद्र गिर जाता है उसके लिए जमीन जायदाद ही महत्वपूर्ण रह जाते हैं। किस प्रकार से पंडित बुद्धिराम बूढ़ी काकी की सारी धन दौलत अपने नाम करके उनको ही दरकिनार कर देता है और वो वृद्ध महिला खाने के एक–एक दाने के लिए मोहताज हो जाती है। बुद्धिराम और उसकी पत्नी बूढ़ी काकी का शोषण करते हैं, उन्हें बहुत ही घृणित दृष्टि से देखते हैं। जायदाद अपने नाम करवाने के पश्चात् उन्हें रोटी तक नहीं देते हैं। प्रेमचन्द ने बूढ़ी काकी कहानी के माध्यम से वृद्धावस्था की ओर संकेत किया है और बुढ़ापे की त्रासदी को उजागर करने का प्रयास किया है। समाज की विसंगति का जीवन्त चित्रण अपनी कहानी में किया है जो हमारे समाज की बहुत बड़ी बुराई है। प्रेमचन्द की बूढ़ी काकी कहानी का स्थान हिन्दी साहित्य में अनुपम है। यह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। वृद्धों की स्थिति का जीवन्त चित्रण प्रेमचन्द की बूढ़ी काकी में हुआ है।

वहीं दूसरी तरफ भीष्म साहनी की चीफ की दावत कहानी भी वृद्ध विमर्श को उद्घाटित करती हुई प्रतीत होती है साथ ही साथ मध्यम वर्गीय परिवार के दिखावटीपन को दर्शाया गया है। चीफ की दावत कहानी की प्रासंगिकता जितनी उस समय थी उससे कहीं ज्यादा प्रासंगिक आज प्रतीत होती है। भीष्म साहनी ने शामनाथ पात्र के माध्यम से युवा पीढ़ी की मनोदशा को उजागर करने का प्रयास किया है कि वह अपनी माँ को ही घर का अतिरिक्त सामान समझता है। उसको अपने बॉस के सामने भी नहीं पड़ने देना चाहता और पूरे समय वह और उसकी

पत्नी इसी प्रयास में लगे रहते हैं। उनसे ये कहते हैं कि जब तक मेहमान चले न जाए तब तक आप बाहर न निकलना। यहाँ पर शामनाथ और उसकी पत्नी के माध्यम से युवा वर्ग की घृणित मानसिकता को प्रदर्शित किया गया है। व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए बूढ़े माता–पिता को भी किनारे कर देता है या उन्हें दुत्कार कर घर से बाहर कर देता है। भीष्म साहनी की चीफ की दावत आज भी उतनी प्रासंगिक है जितनी उस समय थी। भीष्म साहनी ने कहानी में दर्शाया है कि युवा वर्ग किस प्रकार वृद्धों को अतिरिक्त समान या बोझ समझता है। अपनी सुविधाओं के लिए उनके साथ घृणित व्यवहार करने से भी पीछे नहीं हटता। उनको इस बात का भी लिहाज नहीं रहता कि आज जिस जगह हम खड़े हैं ये सब उन्हीं की बदौलत है। जिन बच्चों के पीछे माता–पिता अपना पूरा जीवन लगा देते हैं। उनकी सुविधाओं के पीछे या उनको बनाने में जो माता–पिता अपना सर्वस्व लुटा देते हैं बच्चे उनकी भावनाओं को ही ठेस पहुँचाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। भीष्म साहनी की चीफ की दावत कहानी भी बच्चों की इसी मानसिकता को दर्शाने वाली कहानी है। वहीं चित्रा मुद्‌गल का गिलिगडु उपन्यास भी वृद्ध विमर्श को उद्‌घाटित करने वाला उपन्यास है। वृद्धावस्था की समस्याओं को इस उपन्यास में अत्यन्त व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। वैज्ञानिक युग में जहाँ मनुष्य नित्य प्रतिदिन नवीन ऊँचाईयों को छू रहा है और इसके साथ–साथ जहाँ मानव की औसत आयु बढ़ रही है वहीं दूसरी तरफ वृद्धों की समस्याओं में भी तीव्र गति से बढ़ोत्तरी हो रही है। आज के वैज्ञानिक युग में वृद्ध अपने को फालतू का सामान और अनुपयोगी भी समझने लगे हैं। बुजुर्गों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कई सारे उपन्यास सामने आ रहे हैं। उनमें चित्रा मुद्‌गल का गिलिगडु भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें बुजुर्गों की समस्याओं और उनके दर्द और उनकी व्यथा को चित्रित किया गया है। बुजुर्ग किस प्रकार से आज दर–दर की ठोकरे खाने के लिए विवश हैं। यह उपन्यास आकार में अत्यन्त छोटा है परन्तु संवेदनाओं से भरा हुआ है। कहानी के मुख्य पात्र बाबू जसवंत सिंह के जीवन की घटना को उजागर किया गया है। गिलिगडु का अर्थ है चिड़िया। परन्तु चित्रा मुद्‌गल ने गिलिगडु शब्द का प्रयोग कर्नल स्वामी की जुड़वा पोतियों के लिए किया है। इस उपन्यास में प्रमुख रूप से संयुक्त परिवार के विघटन, टूटते हुए रिश्ते, परिवार में बुजुर्गों की स्थिति और

उनकी भूमिका को दर्शाने का प्रयास लेखिका ने किया है। इसके साथ–साथ परिवार की उस मनोदशा को भी दर्शाया गया है कि वृद्ध घर के फालतू सामान के सिवा और कुछ भी नहीं। उपन्यास के पात्र बाबू जसवन्त सिंह और कर्नल स्वामी की कहानी समाज के बुजुर्गों की दर्दनाक स्थिति को दर्शाती हुई प्रतीत होती है।

"समकालीन दौर में मूल्यहीनता तो बढ़ी ही है, साथ ही साथ तनाव के बाहुपाश ने भी हम सब को जकड़ रखा है। सूचना और तकनीक के तमाम विकल्प और स्त्रोतों के बावजूद हम कहीं न कहीं तनाव से घिरे हुए है। ऐसे में स्वाभिमान है कि निजी सेवाओं में कार्यरत युवा भी तनावमुक्त नहीं रह सकता।"[6]

पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी में जीवन मूल्यों का सोच का और अनुभवों का अन्तर होता है। पुरानी पीढ़ी अपने तरीके से जीवन जीना चाहती है और नयी पीढ़ी अपने तरीके से। दोनों पीढ़ियाँ समझौता करने के लिए हरगिज तैयार नहीं होती। समय परिवर्तनशील है इसलिए दोनों पीढ़ियों की सोच आपस में मिल नहीं सकती। दोनों के लिए यह आवश्यक है कि एक दूसरे के मूल्यों को समझे। स्वातन्त्रयोत्तर युग में ज्ञानरंजन की पिता कहानी इसी सन्दर्भ को उद्घाटित करती हुयी प्रतीत होती है।

ज्ञानरंजन ने पिता कहानी के माध्यम से दो पीढ़ियों अर्थात् युवा पीढ़ी और वृद्ध पीढ़ी के संघर्ष को दिखाया है। युवा वर्ग के लिए बुजुर्ग बोझ के समान है। कहानी में ज्ञानरंजन ने दिखाया है कि पिता मान्यताओं से जकड़े हुए हैं। आधुनिकता को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं परन्तु इसके साथ–साथ वह अपनी सन्तानों को आधुनिक बनने से बिल्कुल भी नहीं रोकते। वहीं दूसरी तरफ बच्चों को उनकी मान्यताओं को जकड़े रहने से समस्यायें होती हैं। उन्हें उनका कपड़े पहनने का तरीका पसन्द नहीं आता वह उनके वस्त्रों को बदल देना चाहते हैं। मगर पिता बहुत ही समझदारी के साथ बच्चों को समझाते हैं कि वस्त्र बदलने से भाव नहीं बदलते। बच्चे चाहते हैं कि पिता आधुनिकता को अपनाये पंखे के नीचे आराम करे, शावर में स्नान करे, अच्छे कपड़े पहने लेकिन पिता को ये सब जरूरी नहीं जान पड़ता। पिता के जीवन में इन सब भौतिक वस्तुओं की कोई भी प्राथमिकता नहीं है।

वो इस बात को समर्थन देते हैं कि भौतिकता की दौड़ में पड़कर मानवता को भूल न जाए।

परिवार रिश्तों के बदलते स्वरूप को दिखाते हुए ज्ञानरंजन की पिता कहानी पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी में आए मानसिकता के बदलाव का चित्रण करती है, लेकिन इनके सम्बन्ध में किसी प्रकार का निष्कर्ष देने का प्रयास बिल्कुल भी नहीं करती। पिता की पीढ़ी यदि अपनी समकालीन स्थितियों से नहीं जुड़ पा रही तो पुत्र की पीढ़ी भी अपने पिता की पीढ़ी को नहीं अपना पा रही है। पिता और पुत्र की पीढ़ी में विचारों और व्यवहारों का अंतर होने के पश्चात् भी भावात्मक राग सम्बन्धों की सहसम्बद्धता साफ परिलक्षित होती है और यह एक तरफा बिल्कुल भी नहीं है।

(ग) हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श का स्वरूप विकास–

हिन्दी साहित्य में कहानी और उपन्यासों के अतिरिक्त निबन्धों कविताओं, पत्रिकाओं, और सिनेमा में भी वृद्ध विमर्श देखने को मिलता है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने 'वृद्धावस्था' निबन्ध के माध्यम से वृद्धों की स्थिति को विभिन्न चरणों के माध्यम से दिखाया है। "सचमुच अब इस सत्य में कोई संदेह नहीं रहा कि मैं वृद्ध हूँ। मेरे जीवन का संध्या काल समीप आ गया है। मुझे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि शरीर में अब वह शक्ति नहीं है, नेत्रों में वह ज्योति नहीं है, मन में वह उमंग नहीं है, वह स्फूर्ति नहीं है, वह चाह नही है।"[7]

समाज में न जाने ऐसे कितने बुजुर्ग हैं जिनके अंदर वही उत्साह वही स्फूर्ति है जो युवाकाल में देखने को मिलती थी। वृद्ध व्यक्तियों के पास अनुभवों का खजाना होता है उनके लिए स्कूल की परीक्षा में पास होने से ज्यादा जीवन की परीक्षा में पास होना ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। "वृद्धावस्था में सुख–दुख की भावना परिवर्तित हो जाती है। तरूणावस्था में आडम्बर अथवा प्रदर्शन की जो चाह रहती है वह वृद्धावस्था में नहीं रह जाती।"[8]

वृद्धों से सम्बन्धित कई कवितायें भी पढ़ने और सुनने को मिल जाती हैं। निशा माथुर अपनी कविता के माध्यम से वृद्धों की स्थिति को बताती हुई कहती हैं–

"चढ़ता दरिया बनकर और उफन के

गर पाना चाहे मंजिल कोई

देकर मशविरा तहजीब का,

एक तर्जुबा बन जाते हैं हमारे बुजुर्ग

जब ये एहतराम होता है कि

कोई हमारा साथी, रहनुमा भी नहीं

खुशियों की जिन्दगी में तब फलसफे बन

जाते हैं हमारे बुजुर्ग।"[9]

डॉ॰ अखिल बंसल अपनी कविता के माध्यम से बताते हैं कि बुजुर्गों को घर में कितनी यातनायें सहन करनी पड़ती हैं। खुद के घर में ही उनके ऊपर पाबन्दियाँ लगा दी जाती हैं। घर के एक कोने में रहने के लिए विवश हो जाते हैं। स्वयं के घर में उन पर कई प्रकार के पहरे रहते हैं। घर के बच्चे उनका सम्मान नहीं करते उनको बोझ मानते हैं। हमेशा इसी फिराक में पड़े रहते हैं कि किसी तरह जायदाद अपने नाम करा ले, इसी दर्दनाक स्थिति को बया़ करते हुए डॉ॰ अखिल बंसल लिखते हैं कि–

"माँ बाबूजी एक तरफ कमरे में पड़े हुए हैं बच्चे बड़े हुए हैं। (रीती आँखे सूनी बाहें धीमी साँसें ठंडी आहें है पाबन्दी तालाबन्दी जेल सरीखा दुःख ये तीखा खुद के घर में उन पर कितने पहरे कड़े हुए हैं।"[10]

डॉ॰ मोहसिन खान उपेक्षा की क्षमा कविता के माध्यम से बताती हैं कि समाज किस प्रकार वृद्धों की उपेक्षा करता है उनको हीन दृष्टि से देखता है–

"हम अपनी जवानी के दिनों में,
अपनी निजता और स्व के घेरे में घिरे रहे।
इतराते रहे खुद पर, करते रहे आवारागर्दी।
ये किस चीज में खास या हुनरमंद,
खुद को नहीं था पता।
बस बदगुमानी में ही जीते रहे।
चाहा नहीं किसी अधेड़ या बूढ़े से मिलना।
कभी मन ही नहीं हुआ उनके पास बैठने का।
बस दूर ही से उनकी
आँखों और निगाहों को निरकुंश
होने की संज्ञा देते रहे।
कहते रहे इनको क्या आता है,
पुरानी फ़सल है, सड़ी हुई।
खुद तो कुछ करते नहीं,
हमें भी कुछ करने से रोकते हैं।"[11]

शैलेन्द्र शांत अपनी कविता के माध्यम से समाज को जागरूक करने का प्रयास करते हैं कि हमें अपने बुजुर्गों का सम्मान करना चाहिए। बुजुर्ग हमारे समाज की अमूल्य निधि हैं। हमें अपने दिलों में उनके लिए प्रेम और स्नेह का भाव रखना चाहिए, उनसे नित्य प्रतिदिन सीख लेते रहना चाहिए।

"जिस्म से लाचार, फिर भी हैं फिक्रमंद
उनके इस जज्बे को सम्मान दीजिए
लुटाते रहे ताउम्र जो प्रेम और नेह
उनको भी मुहब्बत का पैगाम दीाजिए
नगवार गुजरे न उनको काई बात
हो सके तो इस पर भी ध्यान दीजिए
इफरात खजाना है तजुर्बे का उनके पास
बैठिए थोड़ा पास, थोड़ा मान दीजिए

निभाता रहा रिश्तों को बगैर उफ किए
उस बरगद को अब जरा आराम दीजिए।"[12]

सुधीर सक्सेना 'सुधि' ने पिता कविता के माध्यम से बुजुर्गों की उन समस्याओं को भी बताया है कि जब सेवा–निवृत्त होने के पश्चात् पिता जी घर आते हैं तो घर के सदस्यों के द्वारा ही उनका तिरस्कार किया जाता है। इसका उदाहरण हम ऊषा प्रियंवदा की वापसी कहानी में भी देख सकते हैं।

"लो, आज मेरे पिता भी
सेवा–निवृत्त होकर घर लौट आए हैं।
छोड़ने आए हैं उनके बरसों–बरस
साथ काम करने वाले साथी।
पिता को आज मिली है सेवा–काल के दौरान की
भूरि–भूरि प्रशंसाएं और शुभकामनाएं।
कुछ धार्मिक पुस्तकें, पुष्पमालाएं और गुलदस्ते
इन सबके साथ पिता घर लौटे हैं
हंसते–मुसकराते।"[13]

कहानी, उपन्यास, कविताओं और निबन्धों के अतिरिक्त कई पत्रिकाओं में भी वृद्ध विमर्श से सम्बन्धित विशेषांक आये हैं इस दिशा में जनकृति का अगस्त 2015 का अंक और वागर्थ का जुलाई 2019 का अंक उल्लेखनीय है। समाचार पत्रों ने भी इस दिशा में अपना सराहनीय कदम आगे बढ़ाया है।

वागर्थ– वागर्थ पत्रिका ने विभिन्न लेखों के माध्यम से वृद्धों की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक स्थिति को दिखाया है। इसके साथ–साथ वृद्धों से सम्बन्धित विभिन्न सरकारी नीतियों जैसे वृद्धजन ब्यूरो, राष्ट्रीय वृद्धजन परिषद और नेशनल एसोसिएशन ऑफ ओल्डर पर्सन्स का जिक्र किया गया। बुजुर्गों के हितों के लिए विभिन्न नीतियों के क्रियान्वयन की बात की गयी। "ग्रामीण और अशिक्षित बुजुर्गों की हालत एक स्तर पर बदत्तर है, तो दूसरे स्तर पर बेहतर भी है। यही बात

दलित और आदिवासी बुजुर्गों पर लागू होती है। इन बुजुर्गों को आर्थिक दंश का शिकार होना पड़ता है, पर एकाकी जीवन के लिए ये अभिशप्त नहीं होते।"[14]

13 जनवरी 1999 को **'राष्ट्रीय वृद्धजन नीति'** की स्थापना की गयी। जिसका मुख्य उद्देश्य बुजुर्गों की आर्थिक सुरक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुरक्षा, आवास की व्यवस्था, उनके कानूनी अधिकारों की बात करना था। वृद्ध घर परिवार के अतिरिक्त समान की तरह नहीं है, बल्कि वो समाज की रीढ़ की हड्डी है। इसके साथ–साथ किरण सिंह भी अपने लेख के माध्यम से बताते हैं कि बुजुर्गों को भी अपनी मानसिकता बदलने की जरूरत है। भूमंडलीकरण के इस युग में परिवार का अर्थ बहुत सीमित हो गया है। इसमें वृद्धों की स्थिति अत्यधिक दयनीय है। पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के बीच की खाई और भी अधिक गहरी होती जा रही है। भारतवर्ष में बुजुर्गों को बहुत ही सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था परन्तु अब इसमें कमी आती जा रही है। पहले बुजुर्गों को परिवार की नींव माना जाता था, परन्तु आज परिस्थितियाँ बिल्कुल भिन्न है उन्हें बोझ समझा जाने लगा है। जिन्हें कभी परिवार का मुख्य सदस्य समझा जाता था वही आज अन्धकार में जीवन जीने के लिए विवश हैं। वृद्धाश्रमों की बढ़ती हुई संख्या इसी बात का प्रमाण है। वृद्धों को कष्ट देना उन्हें मानसिक प्रताड़ना देना घर से बाहर रहने के लिए विवश करना, जमीन–जायदाद अपने नाम करवा लेने के पश्चात् उन्हें प्लेटफार्म या एयरपोर्ट पर अकेले छोड़कर चले जाना जैसी घटनायें दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है। वो घटना भी सामने आयी जब विदेश से बच्चे अपनी बूढ़ी माँ के पास आते हैं और कहते हैं कि माँ आप यहाँ अकेले रहती हैं आप हमारे साथ चलिए हम वहीं पर आपकी सेवा करेगें। माँ से सारी धन सम्पत्ति अपने नाम करवाने के पश्चात् उन्हें एयरपोर्ट पर बैठाकर ये कहकर चले जाते हैं कि माँ आप यहीं हमारा इन्तजार करिए हम फ्लाइट का पता करके अभी आते हैं। जब काफी समय बीत जाता है और माँ परेशान होकर इधर उधर ढूँढना शुरू करती हैं तो पता चलता है कि जिस फ्लाइट से उनको जाना था वो कब की जा चुकी। यहाँ पर हम कह सकते हैं कि प्रलोभन और स्वार्थ इस कद्र हावी हो जाते हैं कि बूढ़े माता–पिता को भी धिक्कार कर घर से निकाल दिया जाता है।

"बुजुर्गों को बच्चों की सबसे ज्यादा जरूरत होती है। बदलते समय में नई पीढ़ी की सोच और जीवन शैली बदल रही है। इसका प्रभाव परिवारों की संरचना और गठन पर पड़ रहा है। आज के युवा जीवन की आकांक्षा स्वच्छन्द जीवन है, जिसमें किसी का हस्तक्षेप पसन्द नहीं है।"[15]

जनकृति–जनकृति (विमर्श केन्द्रित अन्तर्राष्ट्रीय मासिक ई पत्रिका) का अगस्त, 2015 का अंक भी बुजुर्ग केन्द्रित विशेषांक था। जिसके सम्पादक कुमार गौरव मिश्रा है। इसमें विभिन्न लेखकों ने कविताओं, कहानियों, लघु कथा और आलेखों के माध्यम से अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं। इसमें पाठकों का ध्यान उस ओर आकर्षित किया गया है जिसकी तरफ आमूमन लोगों का ध्यान नहीं जाता। इसके साथ–साथ बुजुर्ग किस–किस प्रकार के कष्ट झेलने के लिए विवश है उसको भी दिखाया गया है। बुजुर्गों की शारीरिक, आर्थिक, मानसिक पीड़ा को भी दिखाया गया है। साथ ही साथ ऐसी कौन सी परिस्थितियाँ बनती है जिसके कारण घर परिवार का आधार स्तम्भ या रौशन मीनार अर्थात् पूरे परिवार को रोशनी देने वाले हमारे घर के बुजुर्ग अँधेरी कोठरियों में रहने को विवश हैं। जिस समय उन्हें अपने बच्चों की सबसे ज्यादा आवश्यकता होती है उस समय उन्हें अकेलेपन का सामना करना पड़ रहा है। इस पत्रिका के माध्यम से हम पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी के बीच के अंतर को देख सकते हैं और बच्चों की जिन्दगी में बुजुर्गों के महत्व को दर्शाया गया है। हमारे बुजुर्गों के पास अनुभवों का खजाना होता है, ज्ञान का भंडार होता है। वो जिन्दगी के कई सारे उतारों और चढ़ावों को पार करके आए होते हैं। उनके द्वारा दी जाने वाली सीख हमारे जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है इसलिए परिवार को बच्चों की प्रथम पाठशाला कहा जाता है। बुजुर्ग समाज में रहने का तरीका और जीवन जीने का ढंग भी समझाते हैं। बुजुर्गों के अनुभव हमारे जीवन में बहुत काम आते हैं। उनको अपने जीवन में अपनाकर हम नित्य नवीन ऊँचाईयों को प्राप्त कर सकते हैं वैज्ञानिक युग में जरूरत है तो उनके साथ समय बिताने की, उनसे बातचीत करने की ताकि उनको भी कभी अकेलेपन का एहसास न हो।

डॉ॰ विनोद बब्बर 'किस हाल में हैं हमारे बुजुर्ग' आलेख के माध्यम से बताते हैं कि "पिछले दिनों दिल्ली के नांगलोई में 75 साल की मुन्नी बेगम को उनके तीन बेटे जंजीर से बांधकर रखते थे। पिछले कई महीनों से सर्दी, गर्मी और बरसात में खुले आसमान के नीचे रह रही उस बुजुर्ग को एक एनजीओ की सूचना पर पुलिस ने बेटों पर केस दर्ज किया। वास्तव में अपनी तरह की कोई इकलौती घटना नहीं है। ऐसा ही मामला पिछले दिनों दिल्ली हाईकोर्ट में सामने आया। 75 से अधिक वर्ष के बूढ़े माँ–बाप को घर से निकाल बाहर करने वाले मामले की सुनवाई के दौरान अदालत ने वकील से पूछा कि बेटा कहाँ है, तो उसने कहा कि वह शिरडी आदि पूजा–स्थलों पर जाते हैं। वकील ने कोर्ट में बताया कि बेटे को संयुक्त हिन्दू परिवार के कानून के तहत सम्पत्ति में हिस्सा मिलना चाहिए। इस पर कोर्ट ने वकील को कड़ी फटकार लगाते हुए संयुक्त हिन्दू परिवार का मतलब समझाते हुए कहा कि जब आप अपने माता–पिता के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते हैं, तो आपका सम्पत्ति में कोई हक नहीं हो सकता।"[16]

पहले बुजुर्ग माता–पिता का घर में बहुत सम्मान होता था। परन्तु धीरे–धीरे उस सम्मान में कमी आती गयी। समाज में उनको व्यर्थ की वस्तु समझा जाने लगा। बुजुर्गों को घर के कलह के कारण वृद्धाश्रमों की ओर मुख करना पड़ा। समाचार पत्रों के माध्यम से भी हम समाज में बुजुर्गों की स्थिति देख सकते हैं। वैज्ञानिक युग में जहाँ परिवार सीमित हुए हैं, सदस्यों की संख्या कम हुई है इसके साथ–साथ परिवार में बुजुर्गों का महत्व भी कम हो गया है। बच्चे इलेक्ट्रानिक यन्त्रों में उलझे रहते हैं। दादा–दादी से बात करने की फुरसत ही नहीं होती उनके पास। अकेलापन आज के आधुनिक युग में उनकी सबसे बड़ी समस्या बनती जा रही है। माता–पिता बहुत ही प्यार के साथ बच्चों को पढ़ा–लिखा कर बड़ा करके काबिल बनाते हैं परन्तु बुढ़ापे में यही बच्चे माता–पिता को अकेला छोड़ देते हैं।

सिनेमा जगत में भी विमर्श से सम्बन्धित कई सारी फिल्में बनी हैं जिसमें बुजुर्गों की समस्याओं को दिखाया गया है। रवि चोपड़ा के निर्देशन में बनी बागबान भी वृद्धों की समस्याओं को उजागर करने वाली मूवी है। जिसमें अमिताभ बच्चन, हेमा मालिनी मुख्य किरदार माता–पिता के किरदार में हैं उनके चार बेटे हैं जिन

बच्चों का वो लोग पालन–पोषण करते हैं उनका ख्याल रखते है। उनको पढ़ा–लिखा कर बड़ा करते हैं। शादी के बाद वो नौकरी के लिए अलग–अलग स्थान पर रहने लग जाते हैं। यहाँ तक कि अपने माता–पिता को भी दुत्कार कर घर से निकाल देते हैं। पिता अपना पूरा जीवन अपने बच्चों के पीछे लगा देते हैं। अपनी पूरी कमाई बच्चों की जरूरतों और मांगों पर खर्च कर देते हैं। वो अपनी ताकत अपने बच्चों की मुस्कान को समझते हैं। उनका मानना है कि वो पैसा ही किस काम का जो वक्त पड़ने पर बच्चों के काम न आ सके। वो अपना सहारा अपने बच्चों को मानते हैं। वो बच्चों को कभी परेशान नहीं होने देते। लेकिन जब बच्चों की बारी आती है तो वो उनका सहारा बनने के लिए तैयार नहीं होते।

इस मूवी में यह दिखाया गया है कि माता–पिता अपने कई बच्चों को एक साथ पाल सकते हैं, उनकी खुशी के लिए अपनी खुशी को भूल जाते हैं। जब बच्चे लायक हो जाते है। और उनके माता–पिता बूढ़े हो जाते हैं, तो बच्चे उन्हें अपने साथ रखने से कतराते हैं।

वर्तमान समय में हम देख सकते हैं एक पीढ़ी और दूसरी पीढ़ी के बीच टूटे हुए पुल को। जिन माता–पिता ने अपने बच्चों के नन्हें हाथों को पकड़कर चलना सिखाया था। जिन होठों पर कभी लोरिया थीं अब उन पर सिर्फ खामोशियां हैं। अब जमाना बदल गया है जिंदगी बदल गयी जहाँ पहले पिता के चेहरे पर ईश्वर देखा जाता था। माँ के चरणों में स्वर्ग दिखाई देता था लेकिन लोग समझदार हो गए हैं। आज की पीढ़ी बहुत होशियार और प्रैक्टिकल हो गयी है उनके लिए हर रिश्ता एक सीढ़ी की तरह है जिन पर पाँव रख कर वो आगे निकल जाते हैं और जब उस सीढ़ी का कोई इस्तेमाल नहीं रहता तो उसे घर के टूटे–फूटे बर्तन फटे पुराने कपड़े, कल के अखबार की तरह रद्दी समझकर किसी कबाड़खाने में फेंक देते हैं। जब माता–पिता युवा और स्वस्थ रहते हैं तो बच्चों का पालन–पोषण करते है लेकिन जब वो वृद्ध हो जाते हैं तो बच्चों की भी ये जिम्मेदारी बनती है कि उनका भी पालन–पोषण करे उनको कभी भूखा न रखे।

जिन्दगी सीढ़ी की तरह ऊपर नहीं जाती जिन्दगी पेड़ की तरह होती है माता–पिता किसी सीढ़ी के पहले पायदान नहीं होते माता–पिता जिन्दगी के पेड़ की जड़ हैं पेड़ कितना भी बड़ा क्यों न हो जाये जितना भी हरा–भरा क्यों न हो जाये जड़ काटने से वो हरा–भरा नहीं रह जाता है। जिन बच्चों की खुशियों के लिए एक पिता अपनी पाई–पाई उन पर हँसते–हँसते खर्च कर देता है। वही बच्चे जब पिता की आँखें धुँधली हो जाती हैं तो उन्हें कतरा भर रोशनी देने से क्यों कतराते हैं। एक पिता अगर बेटे की जिंदगी में पहला कदम उठाने में उसकी मदद् कर सकता है तो वही बेटा अपने पिता के आखिरी कदम उठाने में उसे सहारा क्यों नहीं दे सकता। जिंदगी भर अपने बच्चों पर खुशियाँ लुटाने वाले माता–पिता को किस जुर्म में आँसू और तन्हाई की सजा सुना दी जाती है। बच्चे शायद भूल रहें हैं जो हमारा आज है कल वो बूढ़े होंगें जो सवाल आज हम कर रहे हैं वही सवाल कल वो पूछेगें।

जो बच्चे अपने माता–पिता को प्यार नहीं दे सकते, मान–सम्मान नहीं दे सकते तो फिर उन्हें झूठा दिखावा करने की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. सिंह, वी.एन, जनमेजय सिंह, नगरीय समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ, 228
2. वही, पृष्ठ सं॰, 229
3. http://hindudiaspora.blogspot.com/2018/01/7510211835-seema.html?m=1
4. http://hindudiaspora.blogspot.com/2018/01/7510211835-seema.html?m=1
5. http://www.rishabhuvach.com.blogspot.com/2016/06/blogp-post-18.html?m=1
6. http.//deshajman.blogspot.com./2019/06/blog-post-18.html?m=1
7. www.hindi samay.com
8. www.hindi samay.com
9. http.//deshajman.blogspot.com./2019/06/blog-post-18.html?m=1
10. जनकृति, अगस्त, 2015, पृष्ठ सं॰, 7
11. वही, पृष्ठ सं॰, 9
12. वही, पृष्ठ सं॰, 24
13. वही, पृष्ठ सं॰, 25
14. वागर्थ, जुलाई, 2019, पृष्ठ सं॰, 89
15. वही, पृष्ठ सं॰, 77
16. जनकृति, अगस्त, 2015, पृष्ठ सं॰, 57

द्वितीय अध्याय

हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श के विविध आयाम

द्वितीय अध्याय
हिन्दी साहित्य में वृद्ध विमर्श के विविध आयाम

(क) वृद्ध विमर्श का सामाजिक परिवेश

भारत देश में युवाओं की संख्या सबसे ज्यादा है साथ ही साथ बुजुर्गों की संख्या भी दूसरे नम्बर पर है। एक अनुमान है कि 2050 तक बुजुर्गों की संख्या 20 प्रतिशत हो जायेगी। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति में बुजुर्गों के लिए अर्थात् उनके स्वास्थ्य के लिए कोई विशेष प्रावधान नहीं था। परन्तु कुछ कानून हमारे यहाँ बने हैं अगर कोई भी अपने माता–पिता की उपेक्षा करेगा या उनको अकेला छोड़ देगा तो उसके लिए कुछ दंड के प्रावधान है। हमारे देश के 80 प्रतिशत बुजुर्ग गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहें हैं। उनमें बहुत सी बीमारियों ने भी घर कर लिया है। साथ ही साथ उम्र के साथ जो तकलीफे आती हैं वो अलग। बुजुर्गों के साथ एक समस्या यह भी है कि वो अकेलापना भोगते हैं। बच्चों का साथ नहीं मिलता, अकेले रहने के लिए विवश होना पड़ता है इसलिए आजकल वृद्धाश्रम की संख्या बढ़ती जा रही है। बच्चे अपने माता–पिता को ले जाकर वृद्धाश्रम छोड़ देते हैं। उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो विदेशों में जाकर बस जाते हैं। ऐसे बुजुर्गों को अपने बच्चों का प्यार नहीं मिलता है। इसके बारे में हम बात तो करते हैं परन्तु गम्भीरता से कोई कदम नहीं उठाते। बुजुर्गों की समस्यायें कई तरह की हैं जैसे–सामाजिक, आर्थिक और सेहत सम्बन्धी। सबसे बड़ी बात अलग थलग पड़ जाने की है। पहले संयुक्त परिवार होते थे परन्त अब संयुक्त परिवार नहीं रहे। संयुक्त परिवार की अपनी विशेष सुविधायें होती थी। वर्तमान समय में संयुक्त परिवार तीव्र गति से टूटते जा रहें है, उनका स्थान एकल परिवार ने ले लिया है। एकल परिवार की अपनी अलग समस्यायें हैं। बच्चे बुजुर्गों को बोझ मानने लगे हैं किन्तु बुढ़ापा बोझ बनना नहीं है। बुजुर्गों का सहारा उनके बच्चे होते हैं लेकिन वही बच्चे उनकी उपेक्षा करते हैं। बुजुर्गों को अपने स्वास्थ्य की उतनी चिंता नहीं रहती जितनी इस बात की रहती है कि जिन बच्चों को उन्होंने पाल–पोस कर बड़ा किया आज वही बच्चे उनकी उपेक्षा कर रहे हैं। एकल परिवार में बुजुर्गों को उपेक्षा का और भी अधिक सामना करना पड़ता है।

हमारे समाज में बुजुर्गों की समस्या एक नहीं, अनेकानेक हैं। आज के दौर में नैतिक मूल्य, मानवीय मूल्य सब गायब हो गए हैं, व्यक्ति संवेदन हीन होते जा रहे हैं। किसी के दुःख–दर्द या परेशानियों से किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता।

हम लोग बुजुर्गों के अनुभव से लाभ ही नहीं ले रहे है।, स्वंय भी एकाकी हो रहे हैं, उनको भी एकाकी कर रहे हैं। इसके पीछे का कारण सोशल मीडिया, स्मार्टफोन भी काफी हद तक है। समाज में चारों ओर विसंगतियाँ व्याप्त हो रही हैं। हमें इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे बुजुर्ग ज्ञान का भण्डार, अनुभव का भण्डार हैं। हम उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। वो हैं तभी हमारा अस्तित्व है। जब हम अपने बुजुर्गों का सम्मान करते रहेंगे तभी हम भारत की विरासत को जिन्दा रख पायेंगे।

आधुनिक युग में रिश्तों के मायने ही बदलते जा रहे हैं। एक पीढ़ी और दूसरी पीढ़ी के बीच तालमेल ही नहीं बैठ पा रहा। आपसी प्रेम, स्नेह, सम्मान सब धीरे–धीरे समाप्त होता जा रहा है। ऐसे में बुजुर्गों की स्थिति और भी अधिक चिंता का विषय है। उनको अनदेखा किया जाता है। वो हमारी जड़ हैं, आज जो हमारा वजूद है उन्हीं की वजह से है। उनको हमें पूरा स्नेह, प्यार देना चाहिए। बुजुर्गों की जो भी समस्यायें हैं उन सबको गम्भीरता से लेना चाहिए।

वैज्ञानिक युग में अधिकांशतः ज्यादातर लोग एकान्त प्रिय हो गए है। बच्चे मोबाइल में, सोशल मीडिया में व्यस्त रहते हैं। घर में बुजुर्गों के पास समय रहता है, वो अपने अनुभवों को हमसे साझा करना चाहते हैं परन्तु हमारे पास समय नहीं होता कि हम उनकी बातों को सुनें। जब हम स्वयं अपने माता–पिता की बातों को सुनने के लिए तैयार नहीं होते तो वो अपनी व्यथा कहाँ जाकर बतायेंगे। बुजुर्गों की जो मानसिक पीड़ा रहती है उसका कोई समाधान नहीं होता। इसके लिए सबसे पहले हमें उनकी मानसिक पीड़ा को दूर करना चाहिए, उनकी व्यथा को सुनना चाहिए। पहले देखा जाता था कि चार बच्चों को माँ–बाप पाल कर बड़ा कर देते हैं, परन्तु चार बच्चे मिलकर माता–पिता की देखभाल नहीं कर पाते, आर्थिक स्थिति सामने आ जाती है। आज व्यक्ति मशीनी जिन्दगी जी रहा है, भावुकता खत्म हो

रही है और वहीं संस्कार हम अपने बच्चों को दे रहे हैं। रिश्ते बदलते जा रहे हैं, रिश्तों के मायने बदलते जा रहे हैं। आज की पीढ़ी संवेदनहीन हो गयी है। बुजुर्गों के साथ संवाद होना चाहिए, उनके साथ बातचीत होनी चाहिए तो वे स्वतः ही अपनी समस्याओं को हमसे साँझा करेंगे।

बुजुर्गों के लिए कई समाधान भी है, सरकार भी कई योजनायें बना रही है परन्तु प्रायः हर दिन कोई न कोई ऐसी खबर छपती है जो विचलित कर देती है। कई बार वृद्धाश्रमों में जाकर देखने को मिलता है कि भले ही वहाँ सब एक उम्र के हैं, साथ रह रहें, परन्तु कहीं न कहीं उनकी आँखों में अपनेपन की तलाश रहती है और ये बहुत ही मार्मिक समस्या है। ऐसे दौर में हमे उनको समझने की जरूरत है। इस बात के लिए निरन्तर प्रयास करना है कि वृद्धों के अधिकार उनको मिले। माता–पिता अपने बच्चों से बहुत उम्मीद रखते हैं कहा जाता है कि बच्चे बुढ़ापे की लाठी हैं। परन्तु बच्चे बुजुर्गों के बुढ़ापे का सहारा बनना ही नहीं चाहते। इन सब बातों को देखते हुए बुजुर्गों की स्थिति नित्य प्रतिदिन दयनीय होती जा रही है। बुजुर्गों की स्थिति को देखते हुए संविधान में कई प्रावधान किए गए है। सरकार के द्वारा वृद्ध जनों के लिए कई नीतियाँ बनाई गयी हैं। जिसमें उनके कल्याण की बात की गयी है।

वृद्धों की समस्याओं का एक और बड़ा कारण युवा पीढ़ी के बीच आपसी संघर्ष है। जब बच्चे पढ़ लिखकर विदेश जाकर वहीं बसना चाहते हैं तो माता–पिता अपने परिवेश को छोड़कर उनके साथ जाना नहीं चाहते। माता–पिता की अपनी समस्यायें हैं और बच्चों की अपनी। दोनों समझौता करने के लिए तैयार नहीं होते। माता–पिता अपना पूरा जीवन अपने बच्चों पर अर्पण कर देते हैं, उन पर भरपूर प्यार दुलार लुटाते चले जाते हैं। "माता–पिता जो अपने जीवन का हर एक पल हमारे पालन–पोषण से लेकर सेवा–सुश्रुशा तक अर्पित कर देते हैं। स्वयं के मान–सम्मान, सुख–सुविधाओं को त्यागकर दुःख, गम, विपदा का वरण कर लेते हैं, इसलिए कि हमारा जीवन ठीक तरीके से गुजरता जाये।"[1]

माता–पिता स्वयं कठिनाई में रह लेते हैं अपनी सुख–सुविधाओं का ध्यान नहीं रखते परन्तु अपने बच्चों पर इसकी छाया भी नहीं पड़ने देते परन्तु जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो अपने माता–पिता को ही बाहर कर देते हैं। मौजूदा हालात को देखते हुए आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने माता–पिता के बुढ़ापे की लाठी बने। उनके दुख दर्द को बाँटे, उनकी सुख सुविधाओं का ध्यान रखे क्योंकि आज जो स्थिति उनकी है कल वही स्थिति हमारी होगी। अगर हमारे बच्चे भी हमें घर से बाहर कर देंगें या वृद्धाश्रम में जाकर छोड़ आयेंगे तो हमे उस समय कैसा महसूस होगा। इसलिए हम अपने बुजुर्ग माता–पिता का पूरा ख्याल रखे उनके साथ समय व्यतीत करें, उनके अनुभवों को साझा करें ताकि उन्हें अकेलेपन का सामना न करना पड़े।

(ख) वृद्ध विमर्श का पारिवारिक परिवेश–

कहा जाता है कि आज के बच्चे कल का भविष्य लेकिन वही बच्चे जब बड़े हो जाते हैं तो अपने माता–पिता को ही उपेक्षित दृष्टि से देखते हैं। कोई भी बिल्डिंग जो देखने में सुंदर लगती है यकीनन उसको बनाने से पहले उसकी रूपरेखा तैयार की गयी होगी। यही बात बुजुर्गों के दिमाग में रहती है कि हमारे बच्चे बड़े होकर हमारा सहारा बनेंगे परन्तु आज के इस युग में बच्चे बुजुर्ग माता–पिता को बहुत ही हेय दृष्टि से देखते हैं। उनके साथ रहने में शर्मिंदगी महसूस करते हैं या फिर उनको घर के अतिरिक्त सामान की तरह किसी कोने में रख देते हैं ताकि घर में आये हुए मेहमानों की नजर उन पर ना पड़े। भीष्म साहनी की चीफ की दावत कहानी इसी बात को उद्घाटित करती हुई प्रतीत होती है। पति–पत्नी इस सोच में पड़े हैं कि कहीं माँ चीफ के सामने न आ जाये "माँ से कहें कि जल्दी ही खाना खाकर शाम को ही अपनी कोठरी में चली जाएँ। मेहमान कहीं आठ बजे आयेंगे, इससे पहले ही अपने काम से निपट लें।"[2] वो लोग अपनी बूढ़ी माँ को चीफ के आगे ही नहीं पड़ने देना चाहते उन्हें लगता है कि अगर माँ मेहमानों के सामने पड़ जायेंगी तो हमारी बेइज्जती हो जायेगी। वो लोग उन्हें घर की एक कोठरी में चले जाने को कहते हैं। ये कैसी विडम्बना है समाज की जो माता–पिता अपने बच्चों की खुशियों का पूरा ख्याल रखते हैं। वही बच्चे माता–पिता

को मेहमानों से भी मिलाने में शर्मिंदा होते हैं। वहीं दूसरा उदाहरण हम उषा प्रियंवदा की वापसी कहानी में देख सकते हैं। जीवन भर नौकरी करने के पश्चात् गजाधर बाबू अपने घर वापस आते हैं तो अपने ही घर में उन्हें जगह नहीं मिलती बच्चे उनको बोझ समझते हैं "अमर और उसकी बहु की शिकायतें बहुत थी। उनका कहना था, कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने–जाने वाला हो तो कहीं बिठाने की जगह नहीं।"[3] जो व्यक्ति अपने परिवार के लिए पूरा जीवन काम करता रहा अपनी खुशियों का ख्याल न करके अपने बच्चों की सभी आवश्यकताओं को पूरा करता रहा। जिस घर को बनाने में उसने अपना पूरा जीवन लगा दिया। उसी व्यक्ति के लिए घर में कोई स्थान नहीं उनका घर में रहना ही परिवार के लोगों को पसन्द नहीं आया। हमें ये बात हरगिज भूलनी नहीं चाहिए कि आज जितनी जरूरत उनको हमारी है उससे कहीं ज्यादा जरूरत हमें उनकी है। बच्चे किसी भी प्रकार अपना स्वार्थ साधने में लगे रहते हैं।

उपभोक्तावादी दौर में संयुक्त परिवार टूटते जा रहे हैं इनकी जगह एकल परिवार अपना स्थान ले रहे हैं। जिसमें वृद्धों को कई प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ रहा है। पहले जहाँ एक परिवार में कई सारे लोग एक साथ रहते थे। उन्हें भरपूर आदर मान सम्मान दिया जाता था परन्तु आज के इस दौर में संवेदनहीनता समाप्त हो रही है। रिश्तों के मायने बदल रहे हैं। प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है किन्तु हमें इस बात का पूरा ध्यान रखना है कि हमें भौतिकता की दौड़ में पड़कर मानवता को नहीं भूलना, इंसानियत को नहीं भूलना। "वृद्धों की पारिवारिक समस्या दिन पर दिन गम्भीर होती जा रही है। हमारे देश का संयुक्त परिवार याने तीन–चार पीढ़ियों का साथ रहने की व्यवस्था का लोप होता जा रहा है। घर के बाहर स्वतन्त्र व्यवस्था में रहने के कारण संयुक्त परिवार में रहना बच्चों को मुश्किल लगता है, याने बुजुर्गों के साथ रहने में आज का युवक एक प्रकार का बंधन महसूस करता है।"[4]

आज बच्चे जहाँ दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की कर रहे हैं, वहीं बुजुर्गों को अकेलेपन का सामना करना पड़ रहा है। बच्चे कमाने के लिए देश–विदेश चले जाते हैं माता–पिता को अकेले छोड़कर तो उनके वापिस आने की संभावना कम ही

रहती है। इसका अंजाम ये होता है कि बुजुर्गों को वृद्धाश्रम में अपना जीवन यापन करना पड़ता है। वृद्धाश्रमों की बढ़ती हुई संख्या से हम इस बात का अंदाजा लगा सकते हैं कि बच्चों की अपने माता–पिता को लेकर क्या राय बन रही है। बुजुर्गों को सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, शारिरिक आदि कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। उनकी समस्यायें विश्वव्यापी बन गयी हैं क्योकि बच्चे उनको नजरअदांज कर रहे हैं। अपने कर्त्तव्यों से मुख मोड़ रहे हैं। जिस समय उन्हें पूरे परिवार की जरूरत होती है, परिवार के स्नेह की जरूरत होती है उस समय उनको अकेले जीवन यापन करना पड़ता है। वक्त बदला, समय बदला, हालात बदले और इसके साथ–साथ बदल गए रिश्तों के मायने भी। पहले जहाँ बच्चे माता–पिता से ऊँची आवाज में बात तक नहीं करते थे। उसी भारत देश में बच्चे माता–पिता पर हाथ उठाने से भी परहेज नहीं करते। मुझे बहुत दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि ऐसी घटनायें आम हो गयी है। न्यूज पेपर में आए दिन ऐसी खबरे पढ़ने सुनने को मिलती रहती हैं। वर्तमान समय में जरूरत इस बात की है कि "युवा वर्ग कभी वृद्धों को अपमानित न करे। उन्हें यह मानकर चलना चाहिए कि वे भी कभी बूढ़े होंगे। अगर उनके बच्चे उनकी वृद्धावस्था में उनका अपमान करेंगें तो उन्हें अच्छा नहीं लगेगा। जब आपको अपने बच्चे द्वारा अपमानित होना अच्छा नहीं लगता तो आपको भी अपने वृद्धों को अपमानित करने से विरत रहना चाहिए।"[5]

(ग) वृद्ध विमर्श का आधुनिक परिवेश–

वृद्धों के आधुनिक परिवेश की अगर बात की जाये तो उसमें जो महत्वपूर्ण समस्यायें उभर कर सामने आ रही हैं उनमें कुछ इस प्रकार हैं जैसे–संयुक्त परिवारों का विघटन, अकेलापन, वृद्धाश्रमों की बढ़ती हुयी संख्या, युवा पीढ़ी और वृद्ध पीढ़ियों के बीच का अन्तरद्वन्द। ज्ञानरंजन की पिता कहानी युवा पीढ़ी और वृद्ध पीढ़ी के इसी अन्तरद्वन्द को उद्घाटित करती हुयी प्रतीत होती है। पिता जी किसी भी हाल में अपने जीवन मूल्यों से समझौता करने के लिए तैयार नहीं होते। वो आधुनिकता को अपनाने को तैयार नहीं होते परन्तु इसके साथ–साथ अपने बच्चों पर बोझ बनने को भी तैयार नहीं होते।

आधुनिक दौर में वृद्धों के साथ होने वाला भेदभाव तेजी से बढ़ रहा है। इसको रोकने के लिए सरकार के द्वारा कई नीतियाँ बनाई जा रही हैं। संविधान में भी कई प्रावधान किए गए हैं। बुजुर्गों के कल्याण हेतु कई सारी योजनायें भी बनाई गयी हैं। इसके साथ–साथ कई समाजसेवी संस्थाएँ भी इस दिशा में काम कर रही हैं। वो बुजुर्गों की समस्याओं को समझकर इस पर शोध कार्य कर रहीं हैं और बुजुर्गों की स्थिति में सुधार के लिए सरकार को सुझाव भी दे रहीं हैं। इस दिशा में चाहे वो विश्व के संगठन हो या भारत के इनका उद्देश्य बुजुर्गों की समस्याओं को समझना और उसका निराकरण खोजना है। ये संगठन वृद्धों को सहायता करने उनको आश्रय देने और उनकी सेवा करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिनको अपने परिवार में आश्रय नहीं मिलता उनको वृद्धाश्रमों में रहने का स्थान दिया जाता है। बुजुर्गों के स्वास्थ्य का भी ख्याल रखा जाता है।

आधुनिक युग में एक और महत्वपर्ण समस्या जो उभर कर सामने आ रही है वो है एकाकीपन की समस्या। एकाकीपन के साथ–साथ एक और बात जो सामने आयी है वह यह है कि परिवार में उनके सम्मान में निरन्तर कमी आ रही है। पहले संयुक्त परिवार में उनका बहुत आदर सम्मान होता था परन्तु अब इसमें कमी आ गयी है। पहले इनके अनुभवों से हम सीख लेते थे लेकिन अब हमारी जिन्दगी में उनके अनुभवों का कोई स्थान ही नहीं रह गया है। हमें इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे बुजुर्ग हमारी धरोहर हैं, हमें न केवल उनका सम्मान करना चाहिए बल्कि उनके अनुभव से सीखना भी चाहिए। एक सर्वे से आयी रिपोर्ट से पता चलता है कि बुजुर्गों के साथ बहुत ही शर्मनाक व्यवहार किया जाने लगा है।

अतः हम कह सकते हैं कि वर्तमान समय में बुजुर्गों की समस्यायें तेजी से बढ़ रही हैं और उनकी उपयोगिता कम हो रही है। उन्हें शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, आदि विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। वो घुटन भरी जिन्दगी जीने के लिए विवश हैं। इसमें शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार के बुजुर्ग शामिल हैं। विश्व का एक बहुत बड़ा तबका इन समस्याओं को झेल रहा है। हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि बुजुर्गों के अनुभव से हम बहुत

कुछ सीख सकते हैं। उनकी सीख को जीवन में अपनाकर हम प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं। हमें अपने बुजुर्गों का हमेशा आदर करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. जनकृति, अगस्त, 2015, पृष्ठ संख्या, 75
2. अग्रवाल, पवन, हिन्दी कहानी दर्पण, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 2012, पृष्ठ सं0, 107
3. साहनी, भीष्म, हिन्दी कहानी संग्रह, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ सं0 271
4. झुनझुनवाला, दीनदयाल, वृद्धावस्था की समस्या एवं समाधान, पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ सं0, 13
5. वही, पृष्ठ सं0, 14

तृतीय अध्याय

हिन्दी कथा साहित्य एवं वृद्ध विमर्श

तृतीय अध्याय
हिन्दी कथा साहित्य एवं वृद्ध विमर्श

हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्श से सम्बन्धित कई उपन्यास और कहानियाँ हमारे सामने मौजूद हैं जिसमें बुजुर्गों की समाज में क्या स्थिति है उसको दर्शाने का प्रयास किया गया है। हिन्दी साहित्य एवं वृद्ध विमर्श का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। कहा भी जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण है। यह समाज की सभी स्थितियों को उजागर करता है। इसका उदाहरण हम मुंशी प्रेमचन्द की कहानियों में भी देख सकते हैं। जहाँ प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में महिलाओं की समस्याओं को दर्शाया, बाल मनोविज्ञान दिखाया और इसके साथ–साथ अन्य कई प्रकार की सामाजिक विसंगतियों को दिखाया। इसके साथ–साथ बूढ़ी काकी, बेटों वाली विधवा कहानी के माध्यम से बुजुर्गों की समस्याओं को भी उजागर किया। प्रेमचन्द के साथ हम उषा प्रियंवदा की वापसी, भीष्म साहनी की चीफ की दावत और मोहन राकेश की आर्द्रा कहानी में भी बुजुर्गों की समस्याओं को देख सकते हैं। इसके साथ–साथ काशीनाथ सिंह का रेहन पर रग्घू, चित्रा मुद्गल का गिलिगुडु, कृष्णा सोबती का समय सरगम उपन्यास भी बुजुर्गों के क्या हालात हैं इसको बयां करता हुआ प्रतीत होता है।

मनुष्य प्रलोभन और स्वार्थ के कारण किस कद्र गिर जाता है। धन–दौलत और जमीन–जायदाद के चक्कर में इंसान सारी हदें पार कर जाता है। यहाँ तक कि बूढ़े माता–पिता को भी घर से बाहर करनें में बिल्कुल भी परहेज नहीं करता। यह हमारे समाज की बहुत बड़ी बुराई है। हिन्दी कथा साहित्य में लेखकों ने इसी घृणित मानसिकता को उजागर करने का प्रयास किया है। ये लेखक अपनी कहानियों और उपन्यासों के माध्यम से बुजुर्गों पर होने वाले अत्याचारों को दिखाते हैं। समाज में वृद्धों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। मौजूदा हालात को देखते हुए आवश्यकता इस बात की है कि हम उनकों समस्याओं को समझे और उसको दूर करने का प्रयास करें।

(क) हिन्दी कहानी में वृद्ध विमर्श–

हिन्दी कहानी में वृद्ध विमर्श की शुरूवात मुंशी प्रेमचन्द की बूढ़ी काकी कहानी से होती है। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में जाति, धर्म, आडम्बर आदि विभिन्न विषयों को उठाया है। प्रेमचन्द एक उच्चकोटि के साहित्यकार थे। जिन्होंने हिन्दी साहित्य को एक दिशा प्रदान की जिसके लिए हिन्दी जगत उनका सदा ऋणी रहेगा। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में दिखाया है कि हमारी संस्कृति में माता–पिता का दर्जा बहुत ऊँचा माना जाता है परन्तु वर्तमान समाज में बुजुर्गों की स्थिति दयनीय बनती जा रही है।

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों के माध्यम से वृद्धों की स्थिति को दिखाया है। उन्होंने वृद्धों को लेकर जो कहानियाँ लिखी है उनमें समाज की घृणित मानसिकता को दिखाया गया है। बुजुर्गों के साथ होने वाले अत्याचारों को उन्होंने अपनी कहानियों में बहुत ही मार्मिक ढंग से दिखाया है। वृद्धों की समस्याओं को उनकी परेशानियों को प्रेमचन्द की कहानी में स्थान मिला है। जो निश्चित तौर पर समाज को आईना दिखाती है। बुजुर्गों की पीड़ा उनके कष्टों को प्रेमचन्द ने बूढ़ी काकी में उठाया है। बूढ़ी काकी को कहानी में अपनी भूख मिटाने के लिए जूठे पत्तलों से खाना खाने के लिए विवश होना पड़ता है। ये कैसी विडम्बना है हमारे समाज की जहाँ बुजुर्गों की सारी धन–सम्पत्ति ले लेने के बाद उन्हें पेट भर खाना खाने के लिए भी गिड़गिड़ाना पड़ता है। कहीं कहीं तो उन्हें घर के बाहर का रास्ता भी दिखा दिया जाता है। प्रेमचन्द ने बूढ़ी काकी कहानी के माध्यम से वृद्धों पर होने वाले अत्याचारों को प्रदर्शित किया है। मनुष्यता का स्तर किस कद्र नीचे गिरता जा रहा है। बूढ़ी काकी कहानी में प॰ बुद्धिराम बूढ़ी काकी की सारी सम्पत्ति अपने नाम करवा लेने के पश्चात् उनको भरपेट खाना भी नहीं देता उनको खरी–खोटी सुनाता रहता है। इस काम में उसकी पत्नी रूपा प॰ बुद्धिराम का पूरा साथ देती है। बूढ़ी काकी को कई प्रकार की यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। दो वक्त की रोटी भी उन्हें भरपेट नहीं मिलती घर के सदस्य उनको घर पर बोझ समझते हैं। बस घर की छोटी बेटी लाडली बूढ़ी काकी को प्रेम करती है। उन्हें छुप–छुप कर भोजन देती है। बुद्धिराम अपने बेटे के तिलक में बूढ़ी काकी को मेहमानों के सामने बहुत

अपमानित करता है। जब बूढ़ी काकी भोजन की तलाश में खाने के पास आकर बैठ जाती है तो रूपा भी उनको अपमानित करने में कोई कसर नहीं छोड़ती–''ऐसे पेट में आग लगे, पेट है या भाड़?"[1]

रूपा का व्यवहार बूढ़ी काकी को बहुत अपमानित करता है। ये रूपा की प्रतिदिन की प्रक्रिया रहती है। उसे बूढ़ी काकी का घर में रहना बिल्कुल पसन्द नहीं था। पंडित बुद्धिराम की भी हमेशा यही इच्छा रहती थी कि किसी प्रकार बुढ़िया से छुटकारा मिले। बूढ़ी काकी पर होने वाले अत्याचार दिन प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहे थे। हद तो उस दिन हो जाती है जब बुद्धिराम के बेटे के तिलक में पकने वाली पूड़ियों की महक बूढ़ी काकी को खाना बनाने वाली जगह पर पहुँचा देती है। "पंडित बुद्धिराम काकी को देखते ही तिलमिला गए। पूड़ियों का थाल लिए खड़े थे। थाल को जमीन पर पटक दिया और जिस प्रकार निर्दयी महाजन अपने किसी बेईमान और भगोड़े कर्जदार को देखते ही उसका टेटुआ पकड़ लेता है उसी तरह लपक कर उन्होंने काकी के दोनों हाथ पकड़े और घसीटते हुए लाकर उन्हें अंधेरी कोठरी में धम से पटक दिया। आशारूपी वाटिका लू के एक झोंके में विनष्ट हो गयी।"[2]

यहाँ पर प्रेमचन्द ने बूढ़ी काकी कहानी के माध्यम से यह भी दिखाया है कि किस प्रकार जब बुढ़ापा आता है तो बुजुर्ग की मानसिकता बच्चों जैसे हो जाती है। प० बुद्धिराम और रूपा अभी भी उसे खाने के लिए बुलाने आयेगी। बूढ़ी काकी के सामने खाने की सारी स्थिति नाचने लगती है। अब क्या हो रहा होगा, या अब क्या हो रहा होगा। स्त्रियाँ गीत गा रहीं होगीं। बूढ़ी काकी को बुलाने के लिए न ही बुद्धिराम आता है और न ही रूपा। रात में सबके सो जाने के पश्चात् लाडली छुपाकर बूढ़ी काकी के लिए पूड़िया लाती है। परन्तु उतनी पूड़ियों में काकी का क्या भला होता। काकी मेहमानों के द्वारा खाई गयी जूठी पत्तलों के पास पहुँच जाती है। "क्षुधातुर, हत् ज्ञान बुढ़िया पत्तलों से पूड़ियों के टुकडे चुन–चुनकर भक्षण करने लगी। ओह....दही कितना स्वादिश्ट था, कचौड़िया कितनी सलोनी, खस्ता कितने सुकोमल। काकी बुद्धिहीन होते हुए भी इतना जानती थी कि मैं वह काम

कर रही हूँ जो मुझे कदापि न करना चाहिए। मैं दूसरों की झूठी पत्तल चाट रही हूँ।"[3]

यहाँ पर प्रेमचन्द ने बूढ़ी काकी कहानी के माध्यम से समाज की असलियत को उजागर किया है। न जाने आज ऐसी कितनी काकी इस प्रकार के दंश को झेलने के लिए विवश हैं। बुजुर्गों पर होने वाले अत्याचारों पर तेजी से इजाफा हो रहा है। इंसानियत का स्तर दिन–प्रतिदिन नीचे गिरता जा रहा है। मानवीयता समाप्त हो रही है। भौतिकतावादी दौड़ में पड़कर मनुष्य इंसानियत भूलता जा रहा है। यहाँ पर ये कहना गलत न होगा कि बूढ़ी काकी कहानी सामाजिक कहानी है। समाज में वृद्धों के साथ होने वाले भेदभाव और अत्याचारों को प्रदर्शित करती है। प्रेमचन्द इस कहानी के माध्यम से बताना चाहते हैं कि हमारे समाज में वृद्धों के साथ जो घृणित व्यवहार किया जा रहा है वो पूरी तरह से निंदनीय है। इसके साथ–साथ वृद्धावस्था की ओर संकेत किया है। बुढ़ापा आने पर घर वाले भी साथ नहीं देते। उनको बोझ मानकर किसी एक कोने में कैद कर दिया जाता है। अगर थोड़ी बहुत चाह रहती है तो बस धन–दौलत के लिए। जब धन–दौलत हाथ आ जाती है तो उन पर होने वाले अत्याचारों की संख्या में भी इजाफा होने लगता है। उन्हें मानसिक पीड़ा दी जाती है।

मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में व्यक्तियों के दुःख दर्द को बहुत ही मार्मिक ढ़ंग से उठाया है। उनकी लेखनी किरदारों को जीवन्त कर देती है जब हम इनके द्वारा लिखी गयी बूढ़ी काकी कहानी पढ़ते है तो हमें लगता है कि यह घटना हमारे इर्द–गिर्द ही घूम रही है।

वर्तमान परिस्थितियों को उजागर करना मुंशी प्रेमचन्द की बहुत बड़ी विशेषता है। प्रेमचन्द ने समाज के हर एक वर्ग पर प्रकाश डाला।

वहीं दूसरी तरफ बूढ़ी काकी कहानी की भाँति ही प्रेमचन्द ने पंच परमेश्वर कहानी में एक वृद्ध महिला की स्थिति को उजागर किया है। कहानी की शुरूवात जुम्मन और अलगू की दोस्ती से होती है। उन दोनों में बहुत घनिष्ठ मित्रता रहती है। जुम्मन शेख की खाला उनके साथ रहती थी। पूरी दुनिया में उनका दूसरा कोई

नहीं था। जुम्मन ये कहकर खाला की सारी सम्पत्ति अपने नाम करवा ली कि वह उम्र भर उनका ख्याल रखेगा। धीरे–धीरे जुम्मन के स्वभाव में बदलाव आता गया। अब उसका व्यवहार खाला के प्रति बिल्कुल भी अच्छा नहीं रहा। उनकों आये दिन ताने सुनने पड़ते थे। उनको खाना देने में भी उन लोगों को तकलीफ होने लगी। बूढ़ी खाला जुम्मन और उसके परिवार के लिए बोझ बन गयी। वहाँ पर उसका ख्याल रखने वाला और उसकी देखभाल करने वाला दूसरा कोई भी नहीं था। प्रेमचन्द 'पंच परमेश्वर' कहानी में लिखते हैं–"जुम्मन ने लम्बे चौड़े वादे करके वह मिलकियत अपने नाम लिखवा ली थी, तब तक खालाजान का खूब आदर–सत्कार किया गया। उन्हें खूब स्वादिश्ट पदार्थ खिलाये गए। हलवे–पुलाव की वर्शा सी की गयी। पर रजिस्ट्री की मोहर ने इन खातिरदारियों पर भी मुहर लगा दी।"[4]

वास्तव में आज मानवता, इंसानियत वाले केवल शब्द ही रह गए हैं। बच्चे केवल सम्पत्ति के लालच में माता–पिता के साथ रहते हैं। उसके बाद उनको घर से निकालकर बाहर कर देते हैं। बूढ़े माता–पिता को घर पर बोझ समझते हैं। प्रेमचन्द ने 'बेटों वाली विधवा' में भी एक ऐसी ही वृद्ध स्त्री का वर्णन किया है जिसके पति की मृत्यु के बाद उसके बेटे उसके साथ बहुत गलत व्यवहार करते हैं और इसी लालसा में रहते हैं कि किसी भी प्रकार सारे पैसे उन लोगों को मिल जाये। इसके लिए विभिन्न प्रकार के षड्यन्त्र भी रचते हैं। वो विधवा वृद्ध स्त्री अपने बेटों की खुशी के लिए अपने सारे गहने उन लोगों को दे देती है कहानी में एक जगह फूलमती कहती है – "कैसी बातें मुँह से निकालते हो बेटा, मेरे जीते जी तुम्हें कौन गिरफ्तार कर सकता है! उसका मुँह झुलस दूँगी। गहने इसी दिन के हैं या और किसी दिन के लिए! जब तुम्हीं न रहोगे, तो गहने लेकर क्या आग में झोकूँगी।"[5] उस वृद्ध स्त्री के दिल में अपने बच्चों के लिए अगाध प्रेग था। वहीं बच्चे सिर्फ सम्पत्ति के लालच में उसके साथ थे। वृद्ध स्त्री फूलमती अपने गहनों से ज्यादा अपने बच्चों को प्यार करती थी। वो हमेशा कहती थी कि मेरे बच्चे मेरे गहनों से ज्यादा महत्वपूर्ण थोड़े ही हैं। इन गहनों की औकात ही क्या है मेरे बच्चों के सामने। वहीं दूसरी तरफ फूलमती की बेटी की शादी जिस लड़के से तय हुयी होती है उसको भी बेटे तोड़ना चाहते हैं कि ज्यादा धन–दौलत न देनी पड़े। बच्चे

चालाकी से सारी धन सम्पत्ति लेने के बाद फूलमती से कहते भी हैं कि तुम हमसे पूछे बिना एक पैसा भी नहीं ले सकती हो। इस धन सम्पत्ति में अब तुम्हारा कोई भी हक नहीं है। तुम्हें हर चीज के लिए हमारी इजाजत लेनी पड़ेगी। फूलमती के पैरों तले मानों जमीन ही खिसक जाती है। बेटों की कड़वी बाते सुनकर "उसके मुख से जलती हुयी चिनगारियों की भाँति यह शब्द निकल पड़े – मैनें घर बनवाया, मैनें सम्पत्ति जोड़ी, मैनें तुम्हें जन्म दिया, पाला और आज मैं इस घर में गैर हूँ?"[6]

फूलमती की स्थिति घर में अतिरिक्त सामान की तरह हो गयी। उसको अपना जीवन अभिशाप लगने लगा। माता–पिता कितने लगन से अपने बच्चों को पालते हैं और जिस समय बच्चों को अपने माता–पिता की बुढ़ापे की लाठी बनना चाहिए। उस समय बच्चे उनको बोझ समझने लगते है। यही बात प्रेमचन्द ने अपनी कहानी 'बेटों वाली विधवा' में फूलमती के माध्यम से प्रदर्शित की है। इस कहानी का शीर्षक कहानी की घटना के अनुसार बिल्कुल सटीक बैठता है। चार–चार बेटों के होने के बावजूद उसके दुःख दर्द को समझने वाला कोई नहीं है। वह प्यार, ममता वश अपने बेटों के लिए अपना सब कुछ दे देती है। सारी धन–दौलत दे देती है परन्तु बच्चे ये बात नहीं समझते।

माता–पिता अपने बच्चों की खुशियों के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देते हैं परन्तु बच्चे ये बात नहीं समझते। प्रेमचन्द ने बहुत ही मर्मस्पर्शी ढंग से अपनी कहानियों में वृद्ध विमर्श को उद्घाटित किया है। इनके द्वारा लिखी गयी ईदगाह कहानी में भी वृद्ध विमर्श का एक स्वरूप देख सकते हैं कि अमीना किस प्रकार अपने पोते की खुशी के लिए दिन–रात मेहनत करके पैसा इक्कट्ठा करती है ताकि उसका पोता ईदगाह में लगने वाले मेले में जा सके। ईदगाह कहानी मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने वाली कहानी है। बूढ़ी अमीना हामिद का बहुत ख्याल रखती उसको बहुत प्यार करती। हामिद भी उसके साथ बहुत खुश रहता।

इस दिशा में माधव प्रसाद सप्रे ने 'एक टोकरी भर मिट्टी' कहानी के माध्यम से एक विधवा वृद्ध स्त्री के मनोभावों को अभिव्यक्ति दी है। एक ऐसी स्त्री जिसके

पास उसकी एक पोती थी और एक झोपड़ी। वो झोपड़ी भी जमींदार के द्वारा कब्जा कर ली जाती है। उस वृद्ध स्त्री को उस झोपड़ी से इतना लगाव था कि उसको वह छोड़ना नहीं चाहती थी क्योंकि उस घर में उसका पूरा परिवार खत्म हो गया था। वह झोपड़ी उसके परिवार की अन्तिम निशानी थी। वो वहाँ से अपनी मृत्यु के बाद ही निकलना चाहती थी। इस कहानी के माध्यम से माधव प्रसाद सप्रे वृद्ध जीवन के इस पक्ष को भी उजागर करते हैं कि एक वृद्ध के दिल में अपने परिवार को लेकर कितना स्नेह और प्यार रहता है।

हिन्दी कथा साहित्य में हमें वृद्ध विमर्श से सम्बन्धित कई कहानियाँ मिलती हैं। जिसका विस्तृत वर्णन चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

(ख) हिन्दी उपन्यासों में वृद्ध विमर्श–

हिन्दी कथा साहित्य में वृद्धों की समस्याओं, उनके जीवन मूल्यों से सम्बन्धित कई उपन्यास, कहानी मौजूद है। कुछ पत्रिकाओं जैसे वाग्र्थ और जनकृति ने भी इस दिशा में अपने कदम बढ़ाए हैं। हिन्दी उपन्यासों में वृद्ध विमर्श की अगर बात की जाये तो उसमें काशीनाथ सिंह का रेहन पर रग्घू, चित्रा मुद्‌गल का गिलिगडु, हृदयेश का चार दरवेश, कृष्णा सोबती का समय सरगम उल्लेखनीय है। इन उपन्यासों में वृद्ध विमर्श से सम्बन्धित कई आयाम दिए गए है। वृद्धों की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक स्थिति का वर्णन किया गया है। युवा पीढ़ी और वृद्ध पीढ़ी के बीच के सम्बन्ध को दिखाया गया है। इन उपन्यासों में हम वृद्धों के जीवन में आने वाली विभिन्न समस्याओं को देख सकते हैं।

चित्रा मुद्‌गल ने गिलिगडु उपन्यास कर्नल स्वामी और बाबू जसवन्त सिंह को केन्द्र में रखकर लिखा है। इसमें चित्रा मुद्‌गल ने इन दोंनो पात्रों के कष्टों को दिखाया है। किस प्रकार आज बुजुर्ग अकेले जीवन जीने के लिए विवश हो रहे हैं। वृद्धों की समस्याओं को इस उपन्यास में बहुत ही व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी है। यह उपन्यास संवेदनाओं से परिपूर्ण है। इस उपन्यास का शीर्षक है गिलिगडु जिसका अर्थ होता है–चिड़िया। गिलिगडु शब्द का प्रयोग कर्नल की जुड़वा पोतियों के लिए किया गया है। परिवार का विघटन, टूटते हुए रिश्ते,

बुजुर्गों की परिवार में भूमिका, दो पीढ़ियों के बीच का अंतर इस उपन्यास में दिखाया गया है। बाबू जसवंत सिंह अपने पोते मलय का जन्मदिन मनाना चाहते हैं किन्तु मलय ने अपना जन्मदिन कहीं और मनाने का निर्णय ले लिया है। जहाँ वो अपने दादा को हरगिज शामिल नहीं करना चाहता है। वो बाबू जसवंत सिंह से ऐसे गिफ्ट की माँग करता है जहाँ अकेले जाना उनके लिए बिल्कुल भी सम्भव नहीं हो पाता। वैज्ञानिक युग में बच्चे मोबाइल, सोशल मीडिया पर इतना व्यस्त रहते है कि उनके पास अपने बुजुर्गों से बात करने के लिए भी समय नहीं रहता। बाबू जसवन्त सिंह बहुत ही मेहनत से अपने बेटे को अच्छी परवरिश देते हैं परन्तु उनका बेटा उनको घर पर बोझ समझता है। बाबू जसवन्त सिंह अपने परिवार के टूटने पर बहुत चिन्तित होते हैं। इस प्रकार की कई समस्याओं का वर्णन इस उपन्यास में किया गया है। अन्त में बाबू जसवन्त सिंह निर्णय लेते हैं कि वह अपनी सम्पत्ति सुनगुनिया के नाम कर जायेगें। दुनिया को जो कुछ समझना है समझे । वही दूसरी तरफ कर्नल स्वामी की स्थिति बाबू जसवन्त सिंह से भी ज्यादा खराब है। वो दुनिया के सामने दिखाते है कि वह अपने परिवार अपने बेटे–बहु के साथ बहुत खुश हैं परन्तु असलियत कुछ और है। बाबू जसवन्त सिंह और कर्नल स्वामी की कहानी समाज के बुजुर्गों की दर्दनाक स्थिति को दिखाती हुयी प्रतीत होती है।

काशी नाथ सिंह का 'रेहन पर रग्घू' बदलते हुए पारिवारिक मूल्यों को बयां करता है। रेहन पर रग्घू का मुख्य पात्र रघुनाथ अपने खेत रेहन पर रखकर अपने बच्चों को पढ़ाता–लिखाता है। वो अपने बच्चों का पूरा ख्याल रखता है उन्हें अच्छी परवरिश देता है। अंत में वही बच्चे उसका साथ नहीं देते। रघुनाथ मास्टर का यही जीवन मूल्य रहता है कि मुझे जो बनना था या जिस मुकाम पर पहुँचना था। मैं पहुँच गया अब बच्चों की बारी है। वो अपना पूरा जीवन अपने बच्चों का भविष्य बनाने में लगा देते हैं। अंत में बच्चे उनका साथ नहीं देते। उनको इस बात का एहसास होता है कि तीन बच्चों के होते हुए भी उनको एक भी संतान नहीं है। काशी नाथ सिंह का रेहन पर रग्घू उपन्यास वृद्ध विमर्श को उद्‌घाटित करता हुआ प्रतीत होता है।

हृदयेश ने 'चार दरवेश' उपन्यास में चिन्ताहरण शर्मा, रामप्रसाद, शिवशंकर तथा दिलीपचन्द पात्र के माध्यम से वृद्धावस्था के जीवन मूल्यों को दिखाया है। ये चारो वृद्ध रोजाना एक साथ एक स्थान पर उपस्थित होकर अपने सुख–दुःख को बाँटते है। हृदयेश ने इन चारों बुजुर्गों का बहुत ही सजीव चित्रण किया है। सभी की समस्यायें विभिन्न प्रकार की हैं। चार दरवेश उपन्यास पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि ये घटना हमारे इर्द–गिर्द की है। बहुत ही जीवन्त प्रस्तुति इस उपन्यास में की गयी है।

हिन्दी उपन्यासों में वृद्ध विमर्श से सम्बन्धित कई आयाम उभरकर हमारे सामने आते हैं। इसका विस्तृत वर्णन चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. http://premchand.kahaani.org/2010/12 boodhi-kaki.html?m= ।

2. http://premchand.kahaani.org/2010/12 boodhi-kaki.html?m= ।

3. http://premchand.kahaani.org/2010/12 boodhi-kaki.html?m= ।

4. http://premchand.kahaani.org/2006/03/blog-post_114178834541711 72.html?m= ।

5. https://www.hindisahitya darpan.in/2006/07/beton-wali-vidhwa-story-premchand.html?m= ।

6. https://www.hindi sahityadarpan.in/2006/07/beton-wali-vidhwa-story-premchand.html?m= ।

चतुर्थ अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में वृद्ध विमर्शः एक अनुशीलन

चतुर्थ अध्याय
स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में
वृद्ध विमर्शः एक अनुशीलन

1947 में भारत देश अंग्रेजों से स्वतन्त्र हुआ। विभाजन की कई सारी त्रासदियाँ भी झेलनी पड़ी। कहा भी जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। ये समाज की परिस्थितियों को अभिव्यक्त करता है। उस समय कथा साहित्य में भी ऐसी ही कहानी और उपन्यास देशकाल और वातावरण के अनुसार लिखे गए। देश की आजादी के बाद साहित्य जगत की लेखनी में कई बदलाव आये। कई सारी समस्याओं को साहित्य में दिखाया गया। जिसमें से एक अजनबीपन या अकेलापन भी है। जब गाँव के युवक शहर की तरफ रोजगार के लिए पलायन करने लगे तो वह अपने बीवी बच्चों के साथ शहर में ही बस गए। इससे एक तरफ तो संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ और इसके साथ–साथ गरीबी, मँहगाई भी बढ़ती गयी। "भारत ने विकास के लिए मिश्र अर्थव्यवस्था को अपनाया और समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित किया। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भारत ने **'निर्गुटता'** की नीति अपनाई। स्वाधीन भारत की मानसिकता के निर्माण में दो प्रक्रियाओं का सर्वाधिक महत्व है – एक, आम चुनावों और दूसरी **'पंचवर्षीय'** योजनाओं का। इन्होंने ही इन परिस्थितियों में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ की और उन परिस्थितियों को प्रस्तुत किया, जिन पर स्वाधीनता के उपरान्त का साहित्य, जिसे स्वातंत्र्योत्तर साहित्य कहा जाता है, आधारित है।"[1]

वहीं दूसरी तरफ स्त्री विमर्श ने भी साहित्य में अपना स्थान लिया। स्त्री को केन्द्रित करके कई कहानियाँ, उपन्यास और कवितायें लिखी जाने लगीं। स्त्रियों को जहाँ पहले कमजोर समझा जाता था। उन्हें पढ़ने–लिखने की भी आजादी नहीं थी। उन्हें घर के एक कोने में बन्द कर दिया जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद स्त्रियों की दशा में भी सुधार हुआ।

आज ऐसा कोई कोना नहीं रह गया जहाँ स्त्रियाँ काम न कर रही हों। विज्ञान के क्षेत्र में, टेक्नालॉजी के क्षेत्र में हर जगह आगे हैं। कहा जाता है कि हर सफल आदमी के पीछे औरत का हाथ होता है। उन्होंने पुरूषों को तो सफल बनाया ही बनाया साथ में स्वयं को भी सफल बनाया। स्वयं को भी सफलता के शिरवर पर पहुँचाया। स्त्रियाँ अबला नहीं बल्कि सबला के रूप में हमारे सामने आयीं। स्त्री विमर्श सम्बन्धित लखिकाओं के रूप में कृष्णा सोबती, प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, चित्रा मुद्‌गल, मैत्रेयी पुष्पा, मृदुला गर्ग, ममता कालिया जैसी बहुत सी लेखिकाओं ने अपना योगदान दिया।

स्वतन्त्रता के बाद के हिन्दी उपन्यासों में तत्कालीन समस्यायें देखने को मिली। स्वतन्त्रता के बाद मानवीय जीवन में जो परिवर्तन आये उस पर भी कई उपन्यास लिखे गए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उपन्यासों की कई श्रेणियां सामने आयी जैसे–आंचलिक उपन्यास, सामाजिक उपन्यास, पारिवारिक उपन्यास, अस्तित्ववादी उपन्यास, राजनीतिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, व्यंग्यप्रधान उपन्यास, महानगरीय उपन्यास आदि। वहीं **'नई कहानी आन्दोलन'** का भी सूत्रपात हुआ। नई कहानी पुरानी परिपाटी को छोड़कर मनुष्य के जीवन मूल्यों को वर्तमान परिस्थितियों की सामाजिक स्थितियों को भी प्रदर्शित करने लगी।

स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कथा साहित्य में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, बाल विमर्श के साथ–साथ वृद्ध विमर्श की भी धमक सुनाई देने लगी। वृद्धविमर्श से सम्बन्धित कई उपन्यास कहानियां लिखी गयी। जिसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

"पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में बुजुर्गों की स्थिति को हिन्दी कहानी में चीफ की दावत और वापसी के माध्यम से क्रमशः भीष्म साहनी तथा उषा प्रिंयवदा ने दर्शाया। चीफ की दावत में उपेक्षिता और परिवार में कूड़ा करकट की तरह छिपाई जाने वाली वृद्ध माँ का महत्व उजागर करके प्रतीकात्मक ढंग से परम्परा का महत्व दिरवाया गया है। वापसी निहायत निर्मम ढंग से यह दिरवाती है कि सेवा–निवृत्त

होकर मनुष्य अपने ही परिवार में किस तरह फालतू हो जाता है। वापसी कहानी में टूटते हुए संयुक्त परिवार की विवश स्वीकृति है।"[2]

भीष्म साहनी की **'चीफ की दावत'** कहानी वृद्धों की समस्याओं को उजागर करती हुयी प्रतीत होती है। भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त, 1915 को रावलपिंडी (पाकिस्तान) में हुआ था। इन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, आत्मकथा आदि विभिन्न विधाओं में लेखन कार्य किया। भाग्य रेखा, भटकती राख, शोभायात्रा, पहला पाठ, पटरियाँ, वाडचू, निशाचर, पाली इनके महत्वपूर्ण कहानी संग्रह हैं। तमस, झरोखे, बसंती, कड़ियाँ, कुंतो, मयादास की माड़ी, नीलू नीलिमा नीलोफर इनके अति महत्वपूर्ण उपन्यास है। इन्होंने नाटक के क्षेत्र में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। कबिरा खड़ा बजार में, माधवी, मुआवजे, हानूश) जैसे नाटक के माध्यम से इन्होंने ख्याति प्राप्त की। इसके साथ–साथ आज के अतीत आत्मकथा और गुलेल का खेल, वापसी बाल साहित्य के माध्यम से साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण ख्याति अर्जित की। जिसके लिए साहित्य जगत सदा इनका ऋणी रहेगा। भीष्म साहनी ने प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाया। इन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज को प्रतिबिमबित किया। 1975 में तमस के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 1957 में इन्हें पद्म भूषण से भी सम्मानित किया गया। हिन्दी साहित्य में भीष्म साहनी का नाम बहुत ही आदर के साथ लिया जाता है। इनके साहित्य में हमें समाज की परिस्थितियाँ देखने को मिलती हैं। इन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज को एक दृष्टिकोण प्रदान किया। हम कैसे सभी समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। मानवीय सम्बन्धों को भी इन्होंने अपने साहित्य में उद्घाटित किया। भीष्म साहनी जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इनको कई भाषाओं का ज्ञान था। साहनी ने फिल्म जगत में भी अपना स्थान बनाया। इन पर सर्वाधिक प्रभाव मुंशी प्रेमचन्द का पड़ा। भीष्म साहनी कहानी की शुरूआत **'नीली आँखे'** कहानी से करते हैं, जो कि हंस में प्रकाशित हुयी। कहानी जगत में साहनी जी कि प्रसिद्धि का आधार **'चीफ की दावत'** कहानी बनी। इन्होंने अपनी कहानियों में मानवीय संवेदनाओं, निम्न मध्यवर्गीय परिवार की स्थितियों को बहुत ही सहज ढंग से अभिव्यक्त किया है। इनकी कथा शैली भी अत्यन्त सरल और सहज है, जो पाठक

वर्ग पर अपनी विशेष छाप छोड़ जाती है। पाठक वर्ग बिना मन्त्र मुग्ध हुए रह नहीं सकता। सहनशीलता, नम्रता, दया, अहिंसा, उदारता, विनम्रता इनके कथानक की बहुत बड़ी विशेषताएँ हैं।

साहनी जी प्रगतिवादी परम्परा के महत्वपूर्ण लेखक हैं। वे मानवीय मूल्यों के सदैव पक्षधर रहे। मानवीय मूल्यों के ह्रास को उन्होंने अपने लेखन में उकेरा। उनकी कथाएँ मानवीय संवेदनाओं के सूक्ष्म कारण को छेदती रही, साथ ही साथ मानव जीवन के अंधेरे कोनो को भी सामने लाती रहीं। भीष्म साहनी ने अपने साहित्य के माध्यम से मध्यवर्गीय परिवार के जीवन मूल्यों उनकी मानसिकता को बहुत ही सहज और सरल ढंग से अभिव्यक्त किया है।

'चीफ की दावत' कहानी में एक परिवार का जिक्र है, जिसके माध्यम से साहनी ने एक वृद्ध स्त्री के जीवन का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। यह एक ऐसे पुत्र की कथा है जिसके लिए उसकी माँ बस एक उपयोग की वस्तु है। वह माँ को लोगों के बीच हास्यास्पद लगने के डर से एक कमरे में बन्द करने की बात सोचता है, लेकिन यह परिस्थिति वश नहीं हो पाता। पुत्र की अवसरवादिता और माँ की बेचारगी पाठक के सामने ऐसा करूण दृश्य प्रस्तुत करती है कि हम यह सोचते रह जाते है कि हमने क्या संस्कार पाकर इस समाज का निर्माण किया है। समाज में इतनी विंसगति और हृदयहीनता क्यों है? क्यों, वृद्ध लोगों के लिए हमारे हृदय में जो संवेदना होनी चाहिए, उसका एक प्रतिशत भी नहीं है। यही सवाल इस कथा का उपसंहार है। जहां कहानीकार हमे पहुंचाना चाहता है। इस कहानी में पुत्र की असंवेदनहीनता कुछ हद तक क्रोधित भी कर देती है। पुत्र को पढ़ाने के लिए माँ को अपने कंगन भी बेचने पड़ते हैं। वे पुत्र की तरक्की से खुश होती हैं। नजर कमजोर होने के बावजूद नयी फुलकारी बनाने के लिए तैयार हो जाती है। यहां पर एक प्रश्न यह उठ खड़ा होता है, कि, क्यों संतान के अन्दर संवेदनहीनता ने घर कर लिया है। उसके लिए उसकी माता ही बोझ हो गयी है। क्या यह पालन–पोषण का दोष है? या फिर व्यक्ति विशेष के चरित्र का। किस स्थिति में संतान इतनी स्वार्थी हो सकती है कि वह देखने में असमर्थ मां की फुलकारी बनाने के लिए

जिद्द कर बैठती है। अतः टूटते और अप्रासंगिक होते परिवार संस्था पर विचार किया जाये एवं वृद्ध की स्थिति को लेकर समाज में जागरूकता का संचार हो।

बच्चे जब पढ़–लिखकर बड़े हो जाते है, तो वह अपने माता–पिता को ही लोगों से मिलाने में शर्मिन्दगी महसूस करते हैं। भले ही उस बच्चे के लिए माता–पिता ने अपनी सुख–सुविधाओं का ध्यान न रखा हो। माता–पिता जब बूढ़े हो जाते हैं, तो उन्हें घर के एक कोने में कैद कर दिया जाता है या घर के बाहर का रास्ता दिखा दिया जाता है। भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी वृद्ध विमर्श को उजागर करती हुयी, एक ऐसी ही माँ की कहानी है जो अपने बच्चे को पढ़ाने–लिखाने के लिए अपने सारे गहने बेंच देती है। वही माँ अपने बेटे के लिए बोझ बन जाती है। इस कहानी के माध्यम से हम एक बूढ़ी माँ की मनोदशा को उनके कष्टों को समझ सकते हैं। भीष्म साहनी ने उस बूढ़ी माँ के दर्द को दिखाया है, जो घर के फालतू सामान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं थी। शामनाथ और उसकी पत्नी को इस बात की चिंता सताती रहती है कि, मां कहीं मेहमानों के सामने न पड़ जाये। शामनाथ की पत्नी कहती है – "इन्हें पिछवाड़े इनकी सहेली के घर भेज दो, रात भर बेशक वहीं रहें। कल आ जाएँ। शामनाथ सिगरेट मुंह में रखे, सिकुड़ी आखों से श्रीमती के चेहरे की और देखते हुए बोले– नहीं, मैं नहीं चाहता कि उस बुढ़िया का आना–जाना यहाँ फिर से शुरू हो। पहले ही बड़ी मुश्किल से बंद किया था। माँ से कहें कि जल्दी ही खाना खा के शाम को ही अपनी कोठरी में चली जाएँ। मेहमान कहीं आठ बजे आएँगे। इससे पहले ही अपने काम से निबट लें।[3]

'भीष्म साहनी' ने 'चीफ की दावत' कहानी में मानवीय जीवन की वास्तविकताओं को अंकित किया है। युवा पीढ़ी को बूढ़े माता–पिता का घर में रहना पसन्द नहीं आता। अगर मजबूरी वश उनको घर में रखते भी हैं तो न उनकी सेवा करते हैं और न ही सम्मान। उनकी भावनाओं को हर समय ठेस पहुंचाते हैं। भीष्म साहनी ने नयी पीड़ी की इसी मानसिकता को 'चीफ की दावत' कहानी में प्रदर्शित किया है। कहानी का प्रारम्भ इस प्रकार होता है कि – शामनाथ के घर चीफ की दावत थी। शामनाथ और उसकी पत्नी मेहमानों के आगमन की तैयारी में लगे थे। साफ–सफाई, टेबल, कुर्सियां बरामदे में पहुंचाने में लगे थे। कमरे की सजावट आदि

विभिन्न कार्यों में व्यस्त थे। शामनाथ को इस बात की बड़ी चिन्ता सता रही थी कि यदि मेहमान आ गए और माँ को देख लिया तो, उनको कहाँ छिपाए? उनकी उपस्थिति उन लोगों को बिल्कुल भी अच्छी नहीं लगती।

शामनाथ यह नहीं चाहता था कि माँ मेहमानों के आगे आएं। इसका समाधान खोजते हुए शामनाथ कहते हैं कि मां से कह देंगे कि आज जल्दी खाना खाकर अपने कमरे में चली जाएं, कमरा अंदर से बंद कर लें और बाहर से मैं ताला लगा दूंगा। परंतु अचानक से शामनाथ की पत्नी कहती है कि अगर कमरे में जाते ही मां सो गई और जोर–जोर से खर्राटे लेने लगी तो क्या होगा ? शामनाथ इस समस्या का भी हल निकालते हुए कहता कि मां पहले तुम बरामदे में रहना और जैसे ही मेहमान खाना खाने के लिए बरामदे में आए वैसे ही तुम तुरंत बैठक में चली जाना। यह भी कहते हैं कि मां आज जल्दी मत सोना ताकि तुम्हारे खर्राटे न आएं। शामनाथ मां को उठने–बैठने का तरीका भी बताते हैं। उसके बाद भी शामनाथ को इस बात की चिंता सताती रहती है कि कहीं मां मेहमानों के आगे न पड़ जाएँ। अगर गलती से वह आगे आ गई तो क्या होगा? चीफ की नजर उन पर पड़ गई तो क्या होगा? उन्होंने मां से अगर कुछ पूछ लिया तो वह क्या उत्तर देंगी ? कहीं मां की वजह से मुझे चीफ के आगे शर्मिंदा न होना पड़े।

शामनाथ चीफ को प्रसन्न करने के लिए समस्त आयोजन करते हैं। ड्रिंक्स की भी व्यवस्था करते हैं। ड्रिंक्स के बाद शामनाथ चीफ और समस्त मेहमानों को लेकर भोजन के लिए जाते हैं मां को बरामदे में कुर्सी के ऊपर दोनों पैर रखकर सोते हुए देखकर क्रोधित हो जाते हैं। जैसे ही मां का साक्षात्कार चीफ से होता है। चीफ हाथ मिलाते हुए कहते हैं – हाउ डू यू डू। शामनाथ भी इसी बात को उच्चारित करता है। मां अपनी क्षमतानुसार कह पाती हैं कि हाउ डू डू। ये बातें सुनकर सब हंसने लगते हैं। शामनाथ अपनी मां का परिचय देते हुए चीफ से कहते हैं कि यह गांव क्षेत्र में रही हैं। चीफ शामनाथ की मां से गाना सुनाने के लिए कहते हैं, शामनाथ के कहने पर मां गाना सुना देती हैं। वातावरण खुशहाल हो जाता है, लोग तालियां बजाने लगते हैं। चीफ बहुत प्रसन्न होते हैं। चीफ की इच्छा ग्रामीण क्षेत्र में बनने वाली घरेलू दस्तकारी देखने की होती है। शामनाथ मां की

बनाई हुई फुलकारी चीफ को दिखाते हैं। चीफ फुलकारी देखकर अत्यंत प्रसन्न होते हैं। शामनाथ चीफ को खुश करने के लिए मां से चीफ के लिए भी फुलकारी बनाने के लिए कह देता है। मां अवसर पाकर कमरे में चली जाती हैं। "कोठरी में बैठने की देर थी कि आंखों से छल–छल आंसू बहने लगे। दुपट्टे से बार–बार उन्हें पोंछती पर वे बार–बार उमड़ आते, जैसे बरसों का बांध तोड़कर उमड़ आए हों। माँ ने बहुतेरा दिल को समझाया, हाथ जोड़े, भगवान का नाम लिया, बेटे के चिरायु होने की प्रार्थना की, बार–बार आंखें बंद की, मगर आंसू बरसात के पानी की तरह जैसे थमने में ही न आते थे।"[4]

पार्टी खत्म होने के बाद शामनाथ कमरे में जाकर मां को खुशी में गले लगा लेता है। मां अपने आंखों से आंसू पोंछते हुए हरिद्वार जाने की इच्छा जाहिर करती हैं, यह बात सुनकर शामनाथ फिर से क्रोध में आ जाता हैं वो इस बात से दुःखी नहीं होता कि माँ हरिद्वार जाने की बात कह रही हैं बल्कि वह इस बात से क्रोधित हो जाता है कि जो वादा उसने चीफ से किया है फुलकारी बनाने का वो कौन बनाएगा। वो चीफ को खुश करके प्रमोशन चाहता था।

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी वृद्धों की समाज में क्या स्थिति है, उसको दर्शाती हुई प्रतीत होती है। साथ ही साथ मध्यवर्गीय परिवार के बनावटीपन को दिखाया गया है। इस कहानी की प्रासंगिकता जितनी उस समय थी, उससे कहीं ज्यादा वर्तमान समय में है। साहनी जी ने शामनाथ कहानी के माध्यम से नई पीढ़ी के मन के भावों को प्रदर्शित किया हैं। वह अपनी मां को ही घर का फालतू सामान समझता है। मेहमानों के सामने मां को पड़ने नहीं देना चाहता। यहां पर शामनाथ और उसकी पत्नी के माध्यम से यह दिखाया गया है कि बच्चों के मन में अपने माता–पिता को लेकर क्या सोच है। उन्हें अपमानित करने में जरा सा संकोच नहीं करते अपने फायदे के लिए उनको भला–बुरा कहने में भी नहीं हिचकिचाते। उन्हें इसका भी ख्याल नहीं रहता कि आज जिस जगह वह हैं उनकी बदौलत हैं। जिन बच्चों को बनाने में माता–पिता अपना सब कुछ लुटा देते हैं वही माता–पिता उनके लिए बोझ बन जाते हैं। 'चीफ की दावत' कहानी बच्चों की घृणित मानसिकता को उजागर करने वाली कहानी है।

जहां एक तरफ भारतीय समाज में मां को भगवान का दर्जा दिया गया है। उन्हें प्रेम, स्नेह की प्रतिमूर्ति माना गया है। वहीं दूसरी तरफ आधुनिक भारतीय समाज अपने थोड़े से फायदे के लिए उन्हें अपमानित करता है। उनको मानसिक प्रताड़ना दी जाती है, जोकि अत्यंत गलत है। साहनी जी ने 'चीफ की दावत' कहानी के माध्यम से यह बात आम जनमानस तक पहुंचाने का सफल प्रयास किया। वैज्ञानिक युग में बच्चों की स्वार्थपरकता का चित्रण इस कहानी में किया गया। इसमें दिखाया गया कि बच्चे किस प्रकार लालसा से युक्त होकर जीवन जी रहे हैं। उसके बावजूद वह अपने बच्चों के बारे में कभी भी गलत नहीं सोचते, हमेशा यही प्रार्थना करते हैं कि मेरे बच्चे को सभी प्रकार के सुख प्राप्त हों। हमेशा उसकी तरक्की के बारे में सोचते हैं। उसकी लंबी उम्र की प्रार्थना करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि 'चीफ की दावत' कहानी संवेदना से परिपूर्ण मानवीय मूल्यों को उजागर करने वाली कहानी है।

इसी के साथ–साथ **उषा प्रियंवदा** की **'वापसी'** कहानी भी मध्यवर्गीय परिवार के वृद्धों की परिवारिक स्थिति को दर्शाती हुई प्रतीत होती है। **उषा प्रियंवदा** का जन्म 26 दिसंबर, 1930 का कानपुर, उत्तर प्रदेश में हुआ था। इनकी गणना हिंदी के उच्च लेखिकाओं में होती हैं प्रियंवदा जी की प्रथम कहानी **'लाल चुनर'** सारिका पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। शुरुआती दिनों में इन्होंने अपना लेखन कार्य **'उषा'** नाम से किया। परंतु बाद में अपनी मां का नाम जोड़कर **प्रियंवदा** नाम से लिखने लगीं। इनके लेखन ने साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की। **उषा प्रियंवदा** की गणना हिंदी साहित्य की अग्रणी लेखिकाओं में की जाती है। मानवीय मूल्य, मानव जीवन की समस्याएं, वर्तमान समय की समस्याएं, स्त्री की समस्याएं आदि विभिन्न क्षेत्रों में इन्होंने बहुत ही उच्च कोटि का लेखन कार्य किया। **'जिंदगी और गुलाब के फूल', फिर बसंत आया, कितना झूठ, एक कोई दूसरा** इनके महत्वपूर्ण कहानी संग्रह हैं। इसके साथ–साथ **रुकोगी नहीं राधिका, पचपन खंभे लाल दीवार, शेष यात्रा** इनके महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

इनके उपन्यासों में उच्च मध्यवर्गीय तथा मध्यवर्गीय परिवारों की स्त्रियों की जीवनव्यथा को देख सकते हैं। इन्होंने स्पष्ट किया कि स्त्री चाहे मध्यवर्ग की हो या

उच्च मध्यवर्गीय शोषण समान रूप से होता है। **'पचपन खंभे लाल दीवारें'** इनका प्रथम उपन्यास है जिसकी नायिका **'सुषमा'** अपने परिवार के लिए अपने सभी भावों को दफन कर देती हैं। ठीक यही स्थिति हमें **'रुकोगी नहीं राधिका'** की नायिका **'राधिका'** में और **'शेष यात्रा'** की नायिका **'अनु'** में देखने को मिलती है। उषा प्रियंवदा ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज के खोखले आदर्शों को प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री को एक सशक्त रूप में प्रतिष्ठित किया है। उनके उपन्यासों में हम देख सकते हैं कि स्त्रियां पुरुष के पीछे नहीं बल्कि साथ चलने में यकीन रखती है। वह अपना व्यक्तित्व स्वयं बना सकती हैं।

उषा प्रियंवदा की कहानियां बदलती हुई सामाजिक स्थिति, मानवीय संबंधों को उजागर करती हैं। **'वापसी'** कहानी का प्रकाशन 1960 में हुआ था। **'वापसी'** कहानी के माध्यम से हम देख सकते हैं कि परिवार में किसी व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण उपयोगिता के आधार पर होता है अगर वह उपयोगी नहीं होता तो उसे किनारे कर दिया जाता है या बोझ समझा जाता हैं इस कहानी में बुजुर्गों के अकेलेपन की समस्या को दिखाया गया है।

'वापसी' उषा प्रियंवदा की प्रसिद्ध कहानी हैं। बदलते हुए मानवीय मूल्यों को रेखांकित करती हुई प्रतीत होती है। **'वापसी'** कहानी पारिवारिक संबंधों के साथ–साथ रिश्तो के खोखलेपन को भी दर्शाती है। इस कहानी का प्रमुख पात्र **'गजाधर बाबू'** अपने परिवार की सुख सुविधाओं को पूरा करने के लिए जीवन भर घर से दूर रहकर काम करता है। ताकि उसके घर के सदस्य सुख से रह सकें, उनकी समस्त भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति आराम से हो सके। जब गजाधर बाबू घर वापस आते हैं तब उन्हें वह स्नेह और प्यार नहीं मिलता जो मिलना चाहिए था। उन्हें घर का फालतू और अनुपयोगी सामान समझा जाता है। जिससे दुःखी होकर वह वापस नौकरी करने के लिए चले जाते हैं। यहां पर कहानी का शीर्षक सार्थक सिद्ध होता है। घर में उनकी पत्नी तक उनका साथ नहीं देती बल्कि उनके वापस जाने की खबर सुनकर सभी के दिलों में खुशी की लहर दौड़ पड़ती है। अतः हम कह सकते हैं कि यह कहानी एक मध्यम वर्गीय परिवार के एक ऐसे वृद्ध व्यक्ति की कहानी है जो सेवानिवृत्त होने के पश्चात् जब घर लौटता है तो घर के व्यक्ति

उसे स्वीकार नहीं करते। उनके बीवी, बच्चों और बहुओं को उनका घर में रहना पसंद नहीं आता। इस कहानी के माध्यम से हमें युवा पीढ़ी की मानसिकता देखने को मिलती है। साथ ही साथ सेवानिवृत्त गजाधर बाबू की स्थिति उनके अकेलेपन की समस्या को भी समझा जा सकता है।

उषा प्रियंवदा की कहानी **'वापसी'** के माध्यम से हम मध्यमवर्गीय परिवारों की व्यथा को देख सकते हैं। इसके साथ—साथ देख सकते हैं कि किस प्रकार से सारी संवेदनाएं नष्ट हो रही हैं। भौतिकतावादी युग में जीवन मूल्य समाप्त हो रहे हैं। सेवानिवृत्त गजाधर बाबू जब अपना पूरा जीवन परिवार के लिए, भरण—पोषण करने के बाद जब तक घर की तरफ लौटते हैं तो उन्हें परिवार के सदस्यों की उपेक्षा देखने को मिलती है। परिवार के सभी सदस्यों के द्वारा उनका अपमान किया जाता है। उनको घर में अनुपयोगी समझा जाता है। जिस घर को बनाने में वह अपना पूरा जीवन लगा देते हैं, उस घर में उनके लिए ही जगह नहीं रहती। यहां पर हम गजाधर बाबू के अकेलेपन की समस्या को देख सकते हैं। उनको इस बात का एहसास होता है कि अब परिवार में उनका कोई महत्व नहीं रह गया है। जब वह नौकरी में था तब उनका बड़ा सम्मान था सेवानिवृत्त होने के पश्चात् किसी भी सदस्यों के दिलों में उनके लिए जरा भी हमदर्दी नहीं है। वह अपनी तरफ से अपने परिवार के सभी लोगों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करते हैं परंतु उनके घर के सदस्यों का व्यवहार उनके लिए बिल्कुल भी अच्छा नहीं रहता। गजाधर बाबू जितने उत्साह के साथ घर आते हैं, उतने ही अकेलेपन के भाव के साथ वापस लौट जाते हैं। इस कहानी में हम मानवीय मूल्यों के पतन के साथ—साथ आधुनिक भारतीय परिवेश को भी देख सकते हैं।उषा प्रियंवदा की कहानियां नई कहानियों की कसौटी पर पूरी तरह से खरी उतरती हैं। इस कहानी में वृद्धों के अकेलेपन की समस्या देखने को मिलती है। जिससे हमारा समाज ग्रसित है। बुजुर्गों की समस्याओं को यह कहानी बहुत ही प्रखर तरीके से उजागर करती है। **'वापसी'** कहानी प्रियंवदा जी की महत्वपूर्ण कहानियों में से एक है। शिल्पगत दृष्टि से भी यह कहानी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। एक ऐसे वर्ग की समस्याओं को चित्रित करना इस कहानी का उद्देश्य रहा है। जो अपना पूरा जीवन अपनों के लिए समर्पित कर देता

है। उसको उसी घर में दोयम दर्जे का समझा जाता है। यह कहानी पाठक वर्ग पर अपना विशेष प्रभाव छोड़ती है। इस कहानी को पढ़कर हम भावुक हुए बिना नहीं रह सकते। हिन्दी जगत में इस कहानी का अपना विशेष स्थान है।

वापसी कहानी अत्यन्त हृदयस्पर्शी कहानी है। जो बदलते हुए पारिवारिक मूल्यों की ओर संकेत करती है। गजाधर बाबू पूरा जीवन नौकरी करते हैं। सेवानिवृत्त होने के बाद अपने नौकर गनेशी से विदा लेकर बहुत खुशी के साथ घर वापिस आते हैं। शादी के बाद से उन्होंने बहुत ही कम समय घर वालों के साथ व्यतीत किया था। उनका ज्यादा समय अलग–अलग स्टेशन पर ही बीता था। परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह खुद कष्ट में रहकर उन लोगों को खुशी देते रहे। वो इस बात से बहुत खुश हो रहे थे कि अब वह अपने परिवार के साथ एक खुशहाल जीवन व्यतीत करेंगे। सांसारिक तौर पर देखा जाए तो उन्होंने अपनी सभी जिम्मेदारियों का निर्वहन बहुत ही अच्छे तरीकों से किया। बच्चों को पढ़ाया–लिखाया, शादियां की। शहर में एक बहुत अच्छा घर भी बनवाया। पुराने दिनों को याद करते हुए सोचते हैं कि किस प्रकार वह अपने परिवार के साथ आनंददायक तरीके से रहा करते थे। अब वही दिन वापस आने वाले हैं। पत्नी के हाथों की गरम–गरम रोटियां मिलेंगी खाने को, वो हर छोटी से छोटी बात सोच कर मन ही मन खुश हो रहे थे। इसी आशा के साथ वो घर वापस आ जाते हैं। लेकिन यहां पर उनके साथ वैसा व्यवहार नहीं होता जैसा उन्होंने उम्मीद की थी। पत्नी, बेटा, बहू, बेटी कोई भी उनके आने से खुश नहीं होता। सबके बीच पहुंचने पर उनके सपने–सपने ही रह जाते हैं। उन्हें गणेशी की याद आती है। गणेशी उनका पूरा ध्यान रखता था। हर छोटी से छोटी बात का ख्याल रखता था यहां तो कोई चाय नाश्ता तक पूछने वाला नहीं है।

गजाधर बाबू के स्वयं के घर में उनके रहने के लिए कोई स्थान नहीं बचा था। "नाश्ता कर गजाधर बाबू बैठक में चले गए। घर छोटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थाई प्रबंध कर दिया जाता है उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली सी चारपाई

डाल दी गई थी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े–पड़े, कभी–कभी अनायास ही इसका अनुभव करने लगते है। उन्हें याद आती उन रेलगाड़ियों की जो आतीं और थोड़ी देर रूककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जाती।"[5] गजाधर बाबू के घर होते हुए भी घर का मालिक अमर बना हुआ था। बहू अपने में ही रहती थी। अमर अपनी सभी आवश्यकताएं गजाधर बाबू के पैसे से ही पूरी करता। दोस्तों के साथ पार्टियां, उनकी खातिरदारी के लिए गजाधर बाबू से ही पैसे मांगता था। पुत्री बसंती को भी गजाधर बाबू की रोक–टोक पसंद नहीं थी। वो नहीं चाहती थी कि पिताजी किसी भी चीज में दखलअंदाजी करें। गजाधर बाबू घर में बहुत अकेलापन महसूस करते। उनको घर के किसी भी चीज में शामिल नहीं किया जाता। वो सिर्फ एक पैसा कमाने वाली मशीन बंन कर रह गए थे। उनसे पैसे की चाह तो सबको थी, पर उनकी सीख किसी को भी नहीं चाहिए थी। उनकी कोई भी बात मानना उन लोगों को गवांरा नहीं था। यहां तक कि गजाधर बाबू के जीवनसंगिनी भी उनकी उपेक्षा करती है –

"गजाधर बाबू ने आहट दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी और बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी मांग में सिंदूर डालने की अधिकारिणी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्तव्यों से छुट्टी पा जाती है।"[6]

पत्नी घर और बच्चों के लिए सभी चीजों से समझौता कल लेती हैं। गजाधर बाबू का कोई कार्य या बात उसे रास नहीं आती। उनका रहना सबको खटकता था। गजाधर बाबू अंदर ही अंदर पूरी तरह से टूट चुके थे। वे स्वयं में निर्णय लेते हैं कि यदि "ग्रहस्वामी के लिए पूरे घर में चारपाई की जगह नहीं है, तो यूं ही पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई तो वहां चले जाएंगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिये कहीं स्थान नहीं है तो अपने घर में परदेसी की तरह पड़े रहेंगे, और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले। नरेंद्र रुपए मांगने आया तो बिना कारण पूछे उसे रुपए दे दिए। बसंती काफी अंधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस

में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा – पर उन्हें सबसे बड़ा गम यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कुछ परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया।"[7]

परिवार के सदस्यों के व्यवहार से आहत होने के बाद गजाधर बाबू दोबारा नौकरी करने का फैसला लेते हैं। काफी प्रयास के बाद उनको सेठ रामजीमल चीनी मिल में नौकरी मिल जाती है। ये खबर सुनकर परिवार के सभी सदस्य बहुत खुश होते हैं, कि पिताजी इधर से जा रहे हैं। वह अपनी पत्नी से भी साथ चलने के लिए पूछते हैं तो वह मना कर देती है। गजाधर बाबू सब से विदा लेकर फिर से वापस चले जाते हैं। यहां पर **'वापसी'** शीर्षक बिल्कुल सार्थक सिद्ध होता है। 'वापसी' कहानी सामाजिक विसंगतियों को उजागर करती हुई प्रतीत होती है। इस कहानी के माध्यम से हम देख सकते हैं कि वृद्धों की समाज में क्या स्थिति है। अकेलापन इसी समाज की ही देन है। गजाधर बाबू की कहानी किसी एक व्यक्ति की कहानी नहीं है बल्कि समाज के अधिकांश वृद्धों की कहानी है। सेवानिवृत्त होने के पश्चात् जब व्यक्ति घर आता है तो उसे वह स्नेह प्यार नहीं मिलता जिसका वह हकदार होता है।

व्यक्ति जब तक पैसे कमाता है परिवार के सदस्य उसके साथ देते हैं, जब सेवानिवृत्त होकर घर वापस आता है तो परिवार के सदस्यों का व्यवहार उसके लिए बदल जाता है। इस कहानी में साफ तौर पर दिखाया है कि पत्नी भी सही ढंग से बात नहीं करती। परिवार के सदस्य जब यह बात सुनते हैं कि गजाधर बाबू वापिस जा रहे हैं। सब बहुत खुश हो जाते हैं। गजाधर बाबू का घर आना और फिर जाना यह बहुत ही कष्ट दायक स्थिति होती है। बच्चे माता–पिता को बोझ समझते हैं परंतु माता–पिता बच्चों को बहुत प्यार करते हैं, अपने हर चीज देना चाहते हैं। जब माता–पिता बच्चों को समझाते हैं तो ऐसा लगता है कि वो उनकी बात काट रहे हैं। 'वापसी' दर्दनाक कहानी है। इसका अंत 'वापसी' अत्यंत भावुक कर देने वाला है।

हिंदी साहित्य जगत में 'वापसी' कहानी का बहुत अमूल्य स्थान है। इस कहानी की प्रासंगिकता वर्तमान समय में और भी अधिक है। इस कहानी के माध्यम

से हम दो पीढ़ियों के अंतर्द्वन्द को देख सकते हैं। गजाधर बाबू जो पुरानी पीढ़ी से ताल्लुक रखते थे और उनके बच्चे नई पीढ़ी से। 'वापसी' का अर्थ देखें तो पता चलता है कि जब कोई व्यक्ति किसी स्थान से अपने गंतव्य स्थान पर पहुंचता है तो उसे कहते हैं – वापसी।

दो पीढ़ियों के बीच के अंतर्द्वन्द को हम **'ज्ञानारंजन'** की **'पिता'** कहानी के माध्यम से देख सकते हैं। **'ज्ञानारंजन'** का जन्म 21 नवंबर, 1936 अकोला (महाराष्ट्र) में हुआ। साठोत्तरी पीढ़ी में ज्ञानरंजन का स्थान अग्रणी है। ज्ञानरंजन ने कहानी के अतिरिक्त संस्मरण, व्याख्यान, संपादकीय, साक्षात्कार तथा पत्रों का संकलन भी किया। ज्ञानरंजन की कहानियों का अन्य कई भाषाओं में अनुवाद हुआ। इन्होंने पहल पत्रिका का संपादन किया। इन्हें **सोवियत लैंड नेहरू अवॉर्ड, साहित्य भूषण** सम्मान से भी सम्मानित किया गया। समकालीन कहानी लेखकों में अपनी जगह बनायी। महानगरीय जीवन की विसंगतियों को इन्होंने बहुत ही प्रखरता से प्रस्तुत किया है। मुख्य रूप से दो पीढ़ियों के बीच के अंतर्द्वन्द को अपनी कहानियों के माध्यम से प्रस्तुत किया। फेंस के इधर उधर, सपना नहीं, क्षणजीवी इनके महत्वपूर्ण कहानी संग्रह हैं।

'पिता' कहानी मुख्य रूप से पिता पर केंद्रित है। यह कहानी पिता के इर्द–गिर्द घूमती हैं। इस कहानी के माध्यम से हम मध्यवर्गीय परिवार की जीवन व्यवस्था को देख सकते हैं। पिता के जीवन का सार इस कहानी के द्वारा प्रदर्शित होता हैं पिता घर का मुखिया होता है, घर की जिम्मेदारी उसके ऊपर होती है। वह अपने बच्चों की समस्त आवश्यकता की पूर्ति करता है। पीढ़ियों का वर्णन पिता कहानी के माध्यम से किया गया है।

पुराने मूल्यों से बंधे होने के कारण आधुनिक काल के रहन–सहन को अपनाने में कठिनाई महसूस हो रही है। कई घरों में ये भी स्थितियां देखने को मिलती हैं कि बच्चे अपने माता–पिता के साथ रहने में असहज महसूस करते हैं। हम उन लोगों को बदलना चाहते हैं। इस कहानी में देख सकते हैं कि बच्चे अपने पिता को आधुनिक बनाना चाहते है, किन्तु पिता अपने बच्चों को कभी नहीं कहते

कि तुम आधुनिक न बनों या आधुनिक कपड़े न पहनो। वो बच्चों को नहीं मना करते परन्तु स्वयं भी आधुनिकता को नहीं अपनाते। उन्हीं बच्चों को उनके कपड़े अच्छे नहीं लगते, वो उनको परिवर्तित करना चाहते हैं। पिता बच्चों को समझाते है कि वस्त्र बदल देने से विचार नहीं बदल जाते। जब तक अन्दर से परिवर्तन नहीं आता, तब तक परिवर्तन की कल्पना भी सभव नहीं है।

पिता आधुनिकीकरण को अपनाने के बिल्कुल भी पक्ष में नहीं हैं किन्तु वह अपने बच्चों को आधुनिक बनने से कभी मना भी नहीं करते। पिता के लिए आधुनिकीकरण से समझौता करना मुश्किल है। बच्चे चाहते हैं कि पिता जी आराम से रहे, सभी सुख–सुविधाओं के साथ जीवन व्यतीत करें।

इस कहानी के द्वारा हम दो पीढ़ियों के बीच की टकराहट को देख सकते हैं। कहानी में चित्रित पिता आज भी अपनी संतानों के लिए **'भीमकाय दरवाजों'** की भाँति दिखाई देते हैं। वर्तमान समय से समझौता करना उनके लिए मुश्किल था। लेकिन पिता बच्चों को आधुनिक बनने से कभी नहीं रोकते। वो स्वयं कहते हैं – "आप लोग जाइए न भाई, कॉफी हाउस में बैठिए, झूठी बैनिटी के लिए बेयरा को टिप दीजिए, रहमान के यहाँ डेढ़ रूपये वाले बाल कटाइए, मुझे क्यों घसीटते हैं।"[8] इस कहानी में पिता और पुत्र के सोचने, समझने में अन्तर है। उसके बावजूद उन लोगों का सम्बन्ध अत्यधिक गहरा है।

पुत्र चाहते हैं कि पिताजी आधुनिकता को अपनायें – "आज तक किसी ने पिता को वाश–बेसिन में मुंह–हाथ धोते नहीं देखा। बाहर जाकर बगियावाले नल पर ही कुल्ला दातुन करते हैं। दादा भाई ने अपनी पहली तनख्वाह में गुसलरवाने में उत्साह के साथ एक खूबसूरत शावर लगवाया, लेकिन पिता को अर्से से हम सब आंगन में धोती की लंगोटे की तरह बाँधकर तेल चुपड़े बदन पर बाल्टी–बाल्टी पानी डालते देखते आ रहे हैं। खुले में स्नान करेंगे, जनेऊ से छाती और पीठ का मैल काटेंगे। शुरू में दादा भाई ने सोचा, पिता उसके द्वारा शावर लगवाने से बहुत खुश होंगे और उन्हें नई चीज का उत्साह होगा।"[9]

बच्चों को इस बात की भी चिन्ता रहती है कि समाज उनकी निंदा न करे। पिता जी हर बार उनकी बातों को नजरअन्दाज कर देते है, इसके साथ–साथ उनका प्रेम दिल–प्रतिदिन बढ़ता जाता। कभी भी कम न होता। दोनों एक दूसरे से अत्यधिक प्रेम करते, एक दूसरे की खुशी का रख्याल रखते, लेकिन दिखाते कभी भी नहीं। "चौक से आते वक्त चार आने की जगह तीन आने और तीन आने पर तैयार होने पर, दो आने में चलने वाले रिक्शे के लिए पिता घंटे–घंटे रवड़े रहेंगे। धीरे–धीरे सबके लिए सुविधाएँ जुटाते रहेंगे, लेकिन खुद उसमें नहीं या कम से कम शामिल होंगे। पहले लोग उनकी काफी चिरौरी किया करते थे अब लोग हार गए है। जानने लगे हैं कि पिता के आगे किसी की नहीं चलेगी।"[10]

पुत्र के मन में ख्याल आता कि हम लोग कमरे में आराम से सो रहे हैं और पिता जी गर्मी में परेशान हो रहे हैं। पिता जी सोचते कि मेरी वजह से ही बच्चों की नींद में कोई रवलल न पड़ जाये। अतः हम कह सकते है कि पिता और पुत्र का सम्बन्ध अत्यधिक गहरा होता है। अक्सर बच्चों को दोषी समझा जाता है। कई बार स्थितियां ये होती है कि हमारे बुजुर्ग भी आधुनिकता को नहीं अपनाना चाहते।

एक बूढ़ी माँ की मनःस्थिति में **'आर्द्रा'** कहानी प्रदर्शित होती है। **'आर्द्रा'** **'मोहन राकेश**' की प्रसिद्ध कहानियों में से एक है। मोहन राकेश का जन्म 3 जनवरी, 1925 को अमृतसर में हुआ था। ये एक प्रसिद्ध साहित्यकार थे, इन्होंने हिन्दी जगत की भरपूर सेवा की।साथ ही साथ सारिका पत्रिका का सम्पादन भी किया। इन्हे **'संगीत नाटक अकादमी'** से भी सम्मानित किया गया। इन्होंने बहुत ही अद्भुत नाट्य लेखन का कार्य किया। ये उच्च कोटि के उपन्यासकार और कहानीकार थे। नाट्य क्षेत्र में इनके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा **सकता। 'न आने वाला कल', 'अंधेरे बन्द कमरे', 'अन्तराल'** इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। **'आषाढ़ का एक दिन**', **'आधे–अधूरे', 'लहरों के राजहंस'** प्रसिद्ध नाटक है। **'पहचान' तथा अन्य कहानियाँ', 'क्वार्टर तथा अन्य कहानियाँ' 'वारिस तथा अन्य कहानियाँ'**, महत्वपूर्ण कहानी संग्रह हैं। इसके साथ–साथ परिवेश (निबंध–संग्रह) और आखिरी चट्टान (यात्रा वृतान्त्र) हिन्दी जगत के मील का पत्थर हैं। **'मोहन राकेश'** ने अपने

लेखन के माध्यम से हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा दी। जिसके लिए हिन्दी जगत सदा इनका ऋणी रहेगा।

'मोहन राकेश' ने बहुत ही सरल और सहज भाषा शैली का प्रयोग किया। जो आम जनमानस तक आराम से पहुंच सके। इनकी लेखन शैली अद्भुत थी। कहीं–कहीं उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। मोहन राकेश के लेखन में व्याख्यात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक तथा चित्रात्मक शैलियाँ देखने को मिलती हैं। इनकी गणना हिन्दी जगत के उच्च साहित्यकार के रूप में होती है।

'आर्द्रा' कहानी के माध्यम से माँ का चरित्र दृष्टिगोचर होता है। इस कहानी के द्वारा माँ के बलिदान को देखा जा सकता है। किस प्रकार से मां अपने दोनों बेटों के बीच पिस जाती है। बिना किसी उम्मीद के उन पर भरपूर प्रेम और ममता लुटाती है। उनके दिल में अपने बच्चों के लिए अगाध प्रेम रहता है। यहाँ पर एक मां की अपने बच्चों के लिए चिन्ता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। माँ रात–रात जागकर बिना खाये अपने बेटे का इन्तजार करती। यहां पर हम एक माँ की बेसब्री देख सकते हैं। साथ ही साथ माँ के ह्रदय के अगाध प्रेम को देख सकते हैं। माँ स्वयं बासी रोटी खाकर अपने बेटे को ताजी रोटी देती है। माँ अगर छोटे बिन्नी के साथ रहती तो उन्हें बड़े लाली की चिंता सताती रहती और अगर लाली के साथ रहती तो बिन्नी की चिंता सताती रहती। उसे लाली से कुछ पूछने पर हिचकिचाहट होती, यहाँ रिश्तों की दूरियाँ साफ तौर पर स्पष्ट होती हैं। "बिन्नी की चिट्ठी नहीं आयी ? उसने लाली के कमरे के बाहर रूक कर पूछा। लाली से सवाल पूछने में उसका स्वर थोड़ा दब जाता था। वह बेटा बड़ा होते–होते इतना बड़ा हो गया था कि वह अपने को उससे छोटी महसूस करने लगी थी।"[11] इतना सब होने के बावजूद भी उसे बेटे की चिन्ता होती। यहाँ ममता साफ तौर पर देखने को मिलती है माँ तुझे सलाम, तेरी अजमत को सलाम, तेरी विशालता को सलाम, तेरी नम्रता को सलाम।

बचन को अपने ही घर में परायेपन का अनुभव होता। उसे महसूस होता कि वो घर में बस एक मेहमान की तरह है, कुछ समय के बाद उसे वहाँ से जाना पड़ेगा। पोते और पोतियों की तरफ से भी उसे बस उदासीनता देखने को मिलती। जब वह घर में आयी थी, तब बच्चों का लगाव उसके साथ था। समय बीतने के साथ–साथ बच्चों का दादी से लगाव समाप्त हो जाता है। वह घर के पुराने सामान की तरह हो जाती। उसका साथी सिर्फ अकेलापन रह जाता है। बिन्नी की चिंता उसे हर समय परेशान करती – "बिन्नी ने अभी तक चिट्ठी क्यों नहीं लिखी? वहाँ अंधेरे घर में इस वक्त वह अकेला सोया होगा। रोटी का जाने उसने क्या प्रबन्ध किया है ? उसने चलते वक्त उससे पूछा भी नहीं कि वह पीछे कैसे रहेगा, कहाँ से रोटी खायेगा? उसके पास रहते वह तन–बदन की होश भूला रहता था, अब जाने उसकी क्या हालत होगी? चिट्ठी लिख देता, तो कुछ तो तसल्ली हो जाती। मगर उसे चिट्ठी लिखने की याद भी आयेगी।"[12] बचन की अपने बेटे के लिए चिंता साफ तौर पर परिलक्षित होती है, परन्तु बिन्नी अपनी मां को एक बार भी याद नहीं करता।

वह बिन्नी के पास वापस जाने का निर्णय लेती है, क्योंकि लाली के पास उसका पूरा परिवार था। उसकी पत्नी थी, बच्चे थे। बिन्नी का एकमात्र सहारा बचन (माँ) ही थी। उसके दिल में लाली के लिए भी अगाध प्रेम था। वह जाते–जाते बहु से कहती है, "रात में उसे देर–देर तक मत पढ़ने देना और उससे कहना कि दूसरे–तीसरे दिन सिर में बादाम रोगन जरूर डलवा लिया करे।"[13]

'मोहन राकेश' की **'आर्द्रा'** कहानी वृद्ध विमर्श को दर्शाती हुयी प्रतीत होती है। जिसमें बूढ़ी मां दो बेटों के बीच पिस जाती है। बेटों के हृदय में माँ के लिए उदासीनता रहती है। इसके बावजूद वो अपने बच्चों में भेदभाव नहीं करती।

कहानी के अतिरिक्त उपन्यास में भी वृद्ध जीवन के विविध आयामों को उद्‌घाटित किया गया है। काशीनाथ सिंह ने **'रेहन पर रग्घू'** उपन्यास के माध्यम से वृद्ध जीवन के विभिन्न पलों को रेखांकित किया। काशीनाथ सिंह का जन्म 1 जनवरी, 1937 को जीयनपुर, चंदौली, उत्तर प्रदेश में हुआ था। 2011 में इन्हें **'रेहन**

पर रग्घूं' उपन्यास के लिए **साहित्य अकादमी पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। इसके साथ–साथ **कथा सम्मान, राजभाषा सम्मान**, **साहित्य भूषण सम्मान, शरद जोशी सम्मान** से भी नवाजा गया। साठोत्तरी पीढ़ी में इनका नाम महत्वपूर्ण रूप से उल्लेखनीय है। **'संकट'** कहानी इनकी प्रथम कहानी मानी जाती है। जो कृति पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। काशीनाथ सिंह ने मानवीय जीवन को अपने लेखन के माध्यम से सशक्त रूप से व्यक्त किया है। **'काशी का अस्सी', 'अपना मोर्चा', 'रेहन पर रग्घू , 'महुआ चरित**' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। **'काशी का अस्सी'** उपन्यास के माध्यम से हम काशी की जीवन पद्धति, वहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति को देख सकते हैं। **'अपना मोर्चा**' (1972) छात्र आन्दोलन पर आधारित है। **'महुआ चरित'** में कथा नायिका **'महुआ'** की मनःस्थिति का वर्णन किया गया है। **'आदमीनामा', 'लोग बिस्तरों पर'**, **'नयी तारीख' , 'सुबह का डर' , 'सदी का सबसे बड़ा आदमी'** आदि इनके महत्वपूर्ण कहानी संग्रह है। **'याद हो कि न याद हो', 'घर की जोगी जोगड़ा', 'आछे दिन पाछे गए',** इनके संस्मरण हैं। कहानी, उपन्यास और संस्मरण के अतिरिक्त काशीनाथ सिंह का **'घोआस'** (नाटक), **'आलोचना भी रचना है**' (समीक्षा) और **'हिन्दी में संयुक्त शोध'** भी उल्लेखनीय है। अपना मोर्चा, (उपन्यास) का अन्य कई भाषाओं में भी अनुवाद हुआ। 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास के माध्यम से दो पीढ़ियों के बीच के अन्तर्द्वन्द, रिश्तों की टकराहट, मानवीय सम्बन्धों को और भूमंडलीकरण के परिणाम को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता हैं। उपन्यास के केन्द्र में रघुनाथ है, जो अपनी जिन्दगी सफलतापूर्वक जी रहा है। रघुनाथ अपनी पत्नी और दो बेटों और एक बेटी के साथ जीवन व्यतीत कर रहा है। अचानक से उसकी जिन्दगी में ऐसा घटित होता है कि सब कुछ अस्त व्यस्त हो जाता है। भूमंडलीकरण ने शहरों के साथ–साथ ग्रामीण क्षेत्रों को भी प्रभावित किया। ग्रामीण क्षेत्र में पारिवारिक और सामाजिक वातावरण का स्पष्ट वर्णन 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में देखने को मिलता है। समाप्त होती मानवीय संवेदनाएं किस प्रकार से हर एक व्यक्ति को किसी न किसी रूप में प्रभावित कर रहीं है।

भूमंडलीकरण ने निश्चित तौर पर प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित किया इसके साथ–साथ हम वृद्ध (रघुनाथ) के जीवन मूल्य को भी देख सकते हैं।

यहाँ पर **'रेहन पर रग्घू'** शीर्षक का अर्थ खेत रहन पर रखकर है। रघुनाथ ने अपना पूरा जीवन लगा दिया, इसलिए इसका शीर्षक है, 'रेहन पर रग्घू'। रघुनाथ जिसके पीछे अपना पूरा जीवन लगा देते हैं वही बच्चे साथ नहीं देते। उनको बच्चों की खुशियों का हमेशा ख्याल रहता। "धरती सुन्दर और सुखी तभी होगी जब तुम्हारे बच्चे सुखी सुन्दर और सम्पन्न होंगे। तुम्हे जो बनना था, वह तो बन चुके, अब बच्चे हैं जिनके आगे सारी जिन्दगी और दुनिया पड़ी है। वही तुम्हारे भी भविष्य हैं। जियो तो उन्हीं की जिन्दगी, मरो तो उन्हीं की जिन्दगी। और रघुनाथ ने यही किया। उनकी सारी शक्ति और सारी बुद्धि और सारी पूजीं उन्हें ही संवारने में लगी रही।"[14]

भूमंडलीकरण के इस युग में बच्चों को सिर्फ अपनी ही खुशी का ख्याल रहता है। रघुनाथ स्वयं विचार करते हैं, जिन बच्चों के लिए अपना पूरा जीवन लगा दिया, जमीन कर्ज पर रखनी पड़ी, आज हाथ में कुछ नहीं बचा। एक पैसा भी हाथ नहीं आया।

बेटा संजय अपने पिता की मर्जी के खिलाफ शादी कर लेता है। इस बात की सजा रघुनाथ को मिलती है, मैनेजर के द्वारा। रघु सोचता है ऐसी सन्तानें होने से अच्छा है, काश मेरी कोई संतान नहीं होती, मेरी पत्नी बांझ रहती। पिता होने की खुशी कभी प्राप्त ही नहीं हुई। बेटी भी अपने मन की, शादी कर लेती है, बिना बताये। यही हाल दोनों बेटे का भी। बेटा शादी करने के पश्चात् पिता को बताता है कि मैने शादी कर ली। छोटा बेटा राजू इन दोनो से भी आगे निकलता है। वह पत्नी से कहते हैं राजू से कोई उम्मीद न रखना। वह इन दोनों से भी कई गुना आगे बढ़कर है। बड़ा बेटा अपने माता–पिता को अपने पास बुलाता है, परन्तु स्वयं आने को तैयार नहीं होता। वो जहाँ पर नौकरी करता है, वहीं बस गया। संजय करता है आप जहां पर पैदा हुए, उस स्थान तक ही सीमित रह गए। इससे कभी आगे नहीं बढ़ पायेंगे।

खेती करके आपको क्या फायदा मिला, क्या बना लिया आपने। बेटा चाहता था कि माता–पिता घर आकर घर की देखभाल करें, बच्चों को सम्भाले। रघुनाथ

की हमेशा से यही इच्छा रहती है कि बच्चे आगे बढ़े दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करें, लेकिन एक समय ऐसा भी आये कि सभी सदस्य साथ रहे। खुशियां मनाएं साथ हंसी खुशी से रहें। लेकिन कई साल बीत जाने के बाद भी ऐसा पल कभी देखने को नहीं मिलता। बच्चे इतना आगे निकल गए थे कि उनके लिए पीछे लौट पाना मुश्किल था। उन्हें न मां की खुशियों की चिन्ता थी और न ही पिता के। वो मन ही मन सोचते हैं कि – "रघुनाथ जो जिन्दगी तुम्हें जीनी थी, वह जी चुके। अब अपनी फजीहत कराने के लिए जी रहे हो। यह कोई कह नहीं रहा था लेकिन उसके कान सुन रहे थे और यह मूक स्वर उनके दिल तक पहुंच रहा था।"[15] अपने बेटों की गलती की सजा उन्हें भोगनी पड़ रही थी। अपराध बोध की भावना से वो ग्रसित थे। उनके साथ उनका परिवार नहीं था, वो बिल्कुल अकेले थे। न बहु, न बेटा, न ही बेटी कोई भी साथ नहीं था। उनका सपना, सपना ही रह जाता है। उनके रिश्तों का महल बिखर जाता है। सब दूर जा चुके थे, वो अकेले रह गए थे, बिल्कुल अकेले। दो पीढ़ियों के बीच की टकराहट, समाप्त होते जीवन मूल्य, टूटते पारिवारिक रिश्ते हमें रेहन पर रग्घू उपन्यास में साफ तौर पर देखने को मिलते है। एक ऐसा व्यक्ति जिसने अपना पूरा जीवन परिवार के लिए लगा दिया हो। अंत में वही अकेला रह जाता है, बिल्कुल अकेला।

चित्रा मुद्‌गल का **'गिलिगडु'** उपन्यास सेवानिवृत्त बुजुर्गों की सामाजिक, मानसिक, पारिवारिक स्थिति को दर्शाता हुआ प्रतीत होता है। जो व्यक्ति अपना पूरा जीवन अपने–परिवार के लिए समर्पित कर देता है, अन्त में उसके लिए ही घर में स्थान नहीं रहता। चित्रा मुद्‌गल का जन्म 10 दिसम्बर, 1943 को चेन्नई में हुआ था। चित्रा मुद्‌गल जी ने हिन्दी जगत में अपना अलग मुकाम हासिल किया। वो सदैव मानवीय मूल्यों की पक्षधर रहीं। उन्होंने समाज के हाशिए के लोगों की आवाज बुलन्द की। चित्रा मुद्‌गल ने स्त्रियों, दलितों और बुजुर्गों के हक की बात की। उनके उपन्यास आवाँ, 'गिलिगडु', **'एक जमीन अपनी' और 'पोस्ट बाक्स नं0 203', 'नाला सोपारा'** ने हिन्दी जगत में हलचल मचा दी। इनके साहित्य की भरपूर प्रंशसा की गयी तथा कई सम्मानों से सम्मानित किया गया। आदि–अनादि, नाम से इनकी कहानियां तीन खंडों में प्रकाशित हुई। **'पेंटिंग अकेली है'** इनका महत्वपूर्ण

कहानी संग्रह है। इसके अतिरिक्त नाटक, लघुकला, संकलन, कथात्मक रिपोतार्ज, लेख, बाल उपन्यास, बालकथा संग्रह के क्षेत्र में इन्होंने अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई। इन्हें अनेक पुरस्कारों से नवाजा गया। **'व्यास सम्मान', 'इन्दु शर्मा', 'कथा सम्मान'** आदि। **'एक जमीन अपनी',** के लिए इन्हें **'फणीश्वर नाथ रेणुसम्मान'** से सम्मानित किया गया। **'आवाँ'** उपन्यास **'यू. के. कथा सम्मान'** से सम्मानित किया गया। पोस्ट गॉक्स न. 203, नाला सोपारा के लिए साहित्य अकादमी सम्मान प्राप्त हुआ। चित्रा मुद्‌गल की गणना हिन्दी जगत की प्रसिद्ध लखिकाओं में की जाती है।

'गिलगडु' उपन्यास के माध्यम से चित्रा मुद्‌गल ने वृद्धों की स्थिति का, बदलते हुए जीवन मूल्यों का, समाप्त होते पारिवारिक रिश्तों का बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रण किया है। 'गिलिगडु' उपन्यास दिल को झकझोर देने वाला उपन्यास है। इसमें हम देख सकते हैं युवा पीढ़ी बुजुर्गों का सम्मान नहीं करती। उन्हें अकेला रहने के लिए विवश होना पड़ता है। 13 दिन के समय में चलने वाला यह उपन्यास दो बुजुर्ग **बाबू जसवन्त सिंह** और **कर्नल स्वामी** की पूरी जिंदगी को बयाँ कर देता है।

यह उपन्यास, वृद्धावस्था में होने वाली कठिनाइयों और परेशानियों को अत्यन्त सहजता के साथ त्यक्त करता है। आज जहां मनुष्य दिन–प्रतिदिन नवीन ऊचाईयों को प्राप्त कर रहा है। तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। उसी गति के साथ नैतिक मूल्यों का समापन हो रहा है। बुजुर्गों के साथ होने वाली समस्याओं में इजाफा हो रहा। आज बुजुर्गों को अकेलापन जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इस दिशा में चित्रा मुद्‌गल ने 'गिलिगडु' उपन्यास के माध्यम से वृद्धों की इन्हीं समस्याओं को उजागर किया है। इस उपन्यास को पढ़कर हमें सीख भी मिलती है कि हम अपने बुजुर्ग के साथ ऐसा व्यवहार कभी न करें। हमें इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे बुजुर्ग हमारी धरोहर हैं, जिस प्रकार कोई भी मंजिल खड़ी होती है। सबसे पहले उसकी नींव रखी जाती है। ठीक इसी प्रकार हमारे बुजुर्ग हमारी नींव है। उनके बिना हमारा अस्तित्व ही नहीं है। हमें उनका दिल से सम्मान करना चाहिए। ऐसा कोई भी काम नहीं करना चाहिए, जिससे उनका दिल दुखे या उनके हृदय को जरा सी भी ठेस पहुंचे।

'गिलिगडु' का अर्थ होता है – चिड़िया, परन्तु चित्रा मुद्‌गल ने 'गिलिगडु' शब्द का प्रयोग कर्नल स्वामी की जुड़वा पोतियों के लिए किया है। इसमें प्रमुख रूप से संयुक्त परिवार का विघटन, टूटते हुए रिश्तों को, बुजुर्गों की स्थिति को दिखाया गया है। आज बुजुर्ग घर के एक कोने में पड़े रहने के लिए विवश है। बाबू जसवन्त सिंह और कर्नल स्वामी नामक पात्र बुजुर्गों की दर्दनाक स्थिति को दर्शाते हैं।

आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया यह उपन्यास गिलिगडु 2004 में प्रकाशित हुआ। वर्तमान समय में वृद्धों को लेकर कई उपन्यास और कहानियां लिखी जा रही हैं। इस कड़ी में गिलिगडु उपन्यास ने अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज की। जिसमें बुजुर्गों की व्यथा को दिखाया गया है। इस छोटे से उपन्यास में गागर में सागर भरने वाली बात स्पष्ट प्रतीत होती है। इसमें कम शब्दों में बहुत गहरी बाते कह दी गयी हैं। बाबू जसवन्त सिंह और कर्नल स्वामी सिर्फ उपन्यास के पात्र ही नहीं बल्कि समाज के उन वृद्धों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, जो अकेलापन जैसी समस्याओं को झेल रहे हैं। उनकी स्थिति के माध्यम से पूरे समाज का चित्रण देखने को मिलता है। इसमें ऐसे बुजुर्गों का वर्णन किया गया है जो अपनी पूरी जिंदगी बच्चों के पालन–पोषण में लगा देते हैं और अन्त समय में वही बच्चे साथ नहीं देते। घर के एक कोने में रहने के लिए विवश होना पड़ता है। जो व्यक्ति अकेले पूरे घर का भार उठता है, वृद्ध हो जाने पर उसको बहुत ही दोयम दर्जे का समझा जाता है। सीधे तरीके से बात तक नहीं की जाती। बच्चों के दिलों में अपने बुजुर्गों के लिए किसी भी प्रकार का आदर सम्मान का भाव नहीं रहता। जब तक उनकी उपयोगिता रहती है, तब तक उनका सम्मान रहता है नहीं तो अनुपयोगी होने पर उनको अपमानजनक बाते बोलने में जरा भी पीछे नहीं हटते। उपन्यास के प्रमुख पात्र बाबू जसवन्त सिंह पत्नी की मृत्यु के बाद बहुत ही अकेल हो जाते हैं और बीमारी से ग्रसित हो जाते हैं। इलाज कराने के लिए अपने बेटे नरेन्द्र के पास दिल्ली आ जाते हैं। वह महसूस करते हैं कि उनका घर में रहना न बेटे को पसन्द है न ही बहु को। घर में रहने के लिए उनके पास कोई भी स्थान नहीं है। अकेलापन वहां पर उनकी सबसे बड़ी समस्या है। वो स्वयं में महसूस करते है उनकी घर में स्थिति टॉमी के तरह है। इस घर में दो कुत्ते "एक टॉमी

और दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवन्त सिंह"। टॉमी की स्थिति निःसंदेह उनकी बनी बनिसबत मजबूत है। उसकी इच्छा–अनिच्छा की परवाह में बिछा रहता है पूरा घर। उनके लिए किसी की को भी पीछे रहना जरूरी नहीं लगता। टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। सोसाइटी में उनके घर का रूतबा बढ़ाता है। उनके चलते उनका रुतबा कलंकित हुआ है।"[16]

अपने कनिष्ठ कर्नल स्वामी की मृत्यु से वो बिल्कुल टूट जाते हैं क्योंकि वहाँ पर उनका मित्र ही उनका सहारा रहता है। बाबू जसवन्त सिंह कानपुर जाने का फैसला लेते हैं और इस बात का निश्चय भी करते हैं कि वो अपनी सारी सम्पत्ति नौकरानी सुनगुनिया के नाम कर देंगे। बेटे नरेन्द्र को कुछ नहीं देगे। दाह संस्कार का हक भी नहीं, दाह संस्कार का हक भी वो सुनगुनिया के बेटे को देंगे।

बाबू जसवन्त जल्दी किसी के सामने कुछ नहीं बोलते। लेकिन अगर एक किसी से मित्रता कर लेते है तो अन्त समय तक उसका साथ देते हैं। हर परिस्थिति में उसके साथ खड़े होते हैं। अपना हर दुःख दर्द अपने मित्र से साझा करते हैं। कर्नल स्वामी ने उनकी मित्रता कुछ इसी प्रकार की थी। बेटा नरेन्द्र और बहु सुनयना उनको हर वक्त अपमानित करते हैं वो अपनी सारी पीड़ा अपने दोस्त से साझा करते। कर्नल स्वामी उनके दर्द को समझते और उनको खुश रखने का प्रयास करते। वहीं दूसरी तरफ कर्नल स्वामी अपनी बनी हुई कहानी के माध्यम से अपने को खुश रखते हैं। वो ये दिखाते थे कि वो अपने परिवार के साथ बहुत खुश है। अपनी दोनो गिलिगडु (जुड़वा पोतियों) के साथ हंसी–खुशी जीवन व्यतीत कर रहे है। बेटे, बहु पूरा परिवार एक साथ रहता है। बच्चे उनका बहुत ध्यान रखते हैं परन्तु ये सब एक कल्पना मात्र थी। असलियत इससे बहुत दूर थी ठीक विपरीत। वर्तमान समय में बुजुर्ग के लिए बहुत नियम बनाये जाते हैं। उन्हें संवैधानिक अधिकार भी दिये गये हैं किन्तु उसके बावजूद भी उनका तिरस्कार किया जाता है।

बाबू जसवंत सिंह जैसे ही नरेन्द्र के पास आते हैं उन्हें कुत्ते को सम्भालने की जिम्मेदारी दी जाती है। थोड़े समय तक उनको लगता है कि उनको ग्रहस्थ की जिम्मेदारी दी जा रही है। असलियत ठीक विपरीत रहती है। नरेन्द्र के बच्चे भी पूरा

दिन मोबाइल, वीडियो गेम में लगे रहते हैं। अपने दादा से बात करने के लिए उनके पास समय नहीं। थोड़े समय के पश्चात् बाबू जसवंत सिंह का कमरा भी खाली करवा लिया जाता है, ये कहकर कि इस कमरे में बच्चों के लिए कम्प्यूटर रखा जायेगा। उनको इस बात का एहसास होता की वो दुनिया में बिल्कुल अकेले हैं। जैसे ही घर की चौखट पर कदम रखते उनको अजनबी सा एहसास होता है।

उनको घर के किसी भी काम में हिस्सेदार नहीं बनाया जाता, न ही उनकी इच्छा' अनिच्छा किसी के लिए महत्वपूर्ण होती। जसवन्त सिंह हालात से समझौता कर लेते हैं और उनके हर सही गलत में हां कर देते है। उनको देशी खाना ही पसन्द आता है। बर्गर, पिज्जा ये सब उनको पसन्द नहीं था। तेल–मसाला उनकी सेहत लिए बिल्कुल ठीक नहीं था। उनके दिमाग में ख्याल आता है कि इस बात का जिक्र वह बेटे से करें। नरेन्द्र ने साफ–साफ शब्दों में अपने पिता से कह दिया अगर आपको पसन्द है तो खाइये नहीं तो कोई बात नहीं। ये मेरा घर है, यहाँ आपके हिसाब से चीजें नहीं चल सकती। अगर आपको यहाँ रहना है तो बिना किसी रोक टोक के रहिए। उस दिन के बाद से बाबू जसवन्त सिंह ने नरेन्द्र से कुछ नहीं कहा।

नरेन्द्र पिता से बहुत ही रौब जमाकर बात करता, उनका बिल्कुल भी सम्मान नहीं करता । अपशब्दों का प्रयोग करता। जब अपना बेटा ही नहीं समझ रहा तो बहु से क्या उम्मीद की जाये और बाबू जसवन्त सिंह शान्त हो जाते हैं। हर व्यक्ति की तरह बाबू जसवन्त सिंह ने सपना देखा था कि कानपुर वाले घर में सब साथ में रहेंगे लेकिन उनका सपना सपना ही रह जाता है, वो दिन कभी नहीं आता।

उपन्यास में एक स्थान पर श्रवण कुमार का जिक्र किया गया है। ये वही श्रवण कुमार हैं, जिन्होंने अपने माता–पिता के कह देने मात्र से उन्हें तीर्थयात्रा कराने अपने कन्धे पर बैठाकर ले जाते हैं। बाबू जसवन्त सिंह स्वयं कहते हैं कि ऐसे श्रवण कुमार किस्से कहानियों में मिलेंगे हकीकत में नहीं। वर्तमान समय में ऐसे श्रवण कुमार का मिलना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है।

वहीं दूसरी तरफ कर्नल स्वामी भी टूटते हुए पारिवारिक रिश्तों के दंश को झेल रहे हैं। अन्दर से तो बिल्कुल टूट चुके हैं। मगर ये बात वो किसी के सामने भी जाहिर नहीं करते। सबसे यही बताते कि पूरा परिवार हँसी–खुशी जीवन व्यतीत कर रहा है। वो अपने परम मित्र बाबू जसवन्त सिंह को भी सच्चाई नहीं बताते । पत्नी के गुजर जाने के बाद चारो बेटे अलग–अलग शहरों में चले जाते हैं। कर्नल स्वामी अकेले रह जाते हैं। बेटे कर्नल स्वामी का फ्लैट लेने के लिए उनसे झूठे वादे करते आप बहुत जल्द हमारे साथ रहेंगे। बच्चे उन्हें सिर्फ पैसा प्राप्त करने का जरिया समझते थे। उन लोगों के दिल में पिता कर्नल स्वामी के लिए जरा भी भावनायें नहीं थीं।

यह बहुत गलत मानसिकता है हमारे समाज कि, जो व्यक्ति पूरे परिवार की खुशी का ख्याल रखता है। वृद्ध हो जाने पर उसकी ही खुशी का ख्याल करने वाला कोई नहीं रहता। व्यक्ति जब वृद्ध होता है तो उसे कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है, ऐसे में परिवार के सदस्यों को जिस समय उसका सहारा बनना चाहिये। ऐसे में वो भी संवेदना हीन हो चुके होते हैं। इस बात की चिन्ता किए बिना कि कल को वो भी बुजुर्ग होंगे। जब परिवार साथ रहता है तो हर समस्या का समाधान आसानी से हो जाता है, परिवार के साथ न रहने पर व्यक्ति अन्दर से टूट जाता है। खामोश हो जाता है।

माता–पिता रात दिन मेहनत करके अपने बच्चों को एक अच्छी जिन्दगी देते हैं। इस उम्मीद के साथ कल को वही बच्चे सहारा बनेगें । उन्हें क्या पता होता है कि बड़े होते–होते वो इतने बड़े हो जायगे कि सारी संवेदनाएं समाप्त हो जायेंगी। उनसे बात करने कि लिए भी लोगों के पास समय नहीं रहता। हमें भूलना नहीं चाहिए कि हमारे बुजुर्ग हमारी धरोहर है। उनके बिना हमारा कोई अस्तित्व नहीं है।

'समय सरगम' वृद्धों के अकेलेपन की समस्याओं को प्रखरता के साथ उद्घटित करने वाला उपन्यास है। कृष्णा सोबती का जन्म 18 फरवरी 1925 को हुआ था। इन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से हिन्दी जगत में महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई। कृष्णा सोबती को 1980 में **'साहित्य अकादमी'** पुरस्कार से सम्मानित

किया गया। अपने साहित्य के माध्यम से इन्होंने हिन्दी जगत को एक नई दिशा दी। जिसके लिए हिन्दी जगत सदा इनका ऋणी रहेगा। इनकी भाषा–शैली में विलक्षणता पाई जाती है। ऐसे विषय को इन्होंने अपनी रचनात्मकता का आधार बनाया जो हमारे समाज से हमारे जीवन से सम्बन्धित हैं। पारिवारिक सम्बन्ध, वृद्धों की समस्या इनकी रचनात्मकता का मुख्य आधार है। गागर में सागर भरते हुए इन्होंने उन तन्तुओं को खोलने का प्रयास किया जिसकी हमारे समाज को अत्यधिक आवश्यकता थी। कृष्णा सोबती का पूरा जीवन हम सबके लिए एक मिसाल है। **'जिन्दगीनामा', 'मित्रों–मरजानी'** तथा **'समय–सरगम'** के माध्यम से इन्होंने अपनी महत्तवपूर्ण उपस्थिति दर्ज करवायी। 2017 में इन्हें **'ज्ञानपीठ पुरस्कार'** से भी सम्मानित किया गया। इनका महत्वपूर्ण कहानी सग्रंह **'बादलों के घेरे' 1980** में प्रकाशित हुआ। **'मित्रों–मरजानी', 'यारों के यार', 'तिन पहाड़' 'ऐ लड़की' 'डार से बिछुड़ी,** इनकी महत्वपूर्ण लम्बी कहानियां हैं। इसके अतिरिक्त **'समय सरगम' 'सूरजमुखी अंधेरे के' 'दिलोदानिश'** उपन्यासों के माध्यम से समाज को एक आईना दिखाया। इनके संस्मरणों ने पाठक वर्ग के ऊपर अपनी विशेष छाप छोड़ी जैसे– **'सोबती एक सोहबत', 'हम हशमत', 'शब्दों के आलोक में', 'सोबती वैद संवाद'** आदि। **'बुद्ध का कमण्डलःलद्दाख'** इनका महत्वपूर्ण यात्रा आख्यान है। कृष्णा सोबती ने अपने साहित्य के माध्यम से समाज के अन्दर एक सचेतता और जागरूकता लाने का प्रयास किया। इनके साहित्य को पढ़कर पाठक वर्ग इनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। स्त्री को केन्द्रित करके इन्होंने अपनी कई महत्वपूर्ण रचनाएं लिखी। स्त्री की मानसिक दशा को बखूबी उजागर किया। इनकी प्रत्येक रचना में विविधता पायी जाती है। साथ ही साथ नए पात्रों का सृजन भी किया।

कृष्णा सोबती द्वारा सन् 2006 में लिखा गया यह उपन्यास **'समय सरगम'** वृद्ध पीढ़ी पर लिखा गया उपन्यास है। यह उपन्यास 21 भागों में विभक्त है। उपन्यास के प्रमुख पात्र ईशान और आरण्या हैं। ये वो वृद्ध हैं जो अपना बचा हुआ जीवन पूरे उत्साह के साथ व्यतीत करते हैं। जीवन अपनी गति से चलता रहता है। लेकिन जीवन जीना वह है जो हम अपनी समस्त चिन्ताओं को किनारे करते हुए

जीवन जीते हैं। आरण्या और ईशान के माध्यम से हम देख सकते हैं कि उसका जीवन किसी के ऊपर निर्भर नहीं है। वे अपने जीवन की परिभाषा स्वयं लिखते हैं। आरण्या स्वयं कती है हमारे जीवन में किसी का हस्तक्षेप नहीं है। घर पहुंचने पर हमारा स्वागत करने वाला कोई नहीं है। हमें अपना 'स्वागत' स्वयं ही करना पड़ता है।

'समय सरगम' उन बुजुर्गों की आवाज को बुलन्द करता है, जो जीवन की सांध्य बेला पर अकेले जीवन जीने को मजबूर हैं। अकेलेपन के कई कारण देखने को मिलते हैं। प्रथम श्रेणी में वो बुजुर्ग हैं जो घर में रहते हुए भी किनारे कर दिर जाते हैं। द्वितीय श्रेणी में वो बुजुर्ग हैं, जिनके बच्चे साथ नहीं रहते। तृतीय श्रेणी में वो वृद्ध शामिल हैं, जिनके बच्चे माता–पिता को वृद्धाश्रम छोड़ देते हैं। इस उपन्यास में वृद्धों की स्थिति, टूटते पारिवारिक संबन्धों को प्रमुखता के साथ रेखाकिंत किया गया है। प्रभुदयाल, कामिनी और दमयन्ती पारिवारिक सम्बन्धों को बयाँ करते हुए प्रतीत होते हैं। दमयन्ती वह हैं, जिसे अपने बच्चों के द्वारा ही रोजाना अपमानित होना पड़ता है। प्रभुदयाल को उनके परिवार के सदस्य ही मार देते हैं। कामिनी को उसके परिवार के सदस्यों के द्वारा ही ठगा जा रहा है। दमयन्ती एक ऐसी स्त्री है जिसके बेटे–बहु उसके अपने ही घर में स्वयं के द्वारा बनाये गये सामान का प्रयोग करने पर प्रतिबन्ध लगा देते हैं वह अपनी इच्हानुसार किसी भी सामान का प्रयोग नहीं कर सकती थी। सारी सुख, सुविधाओं के होते हुए भी वह अकेला महसूस करती – "मैं तुम्हारी तरह अकेली होती तो क्यों परेशान होती। बच्चे साथ रह रहे हैं। मेरे घर में मेरा किचन चल रहा है, खर्चा मैं कर रही हूँ और मैं अपने कमरे में अकेली पड़ी रहती हूँ। बिना मेरी इजाजत मेरा सामान इधर से उधर करते रहते हैं... ....मैं अपने बच्चों से वैर विरोध क्यों करूँगी। उनका भी कोई फर्ज बनता है, मैने कुछ खया–पिया है कि नहीं – बीमार हूँ, दवा लानी है, टेस्ट करवाना है – डॉक्टर के पास जाना है। वह सब मैं अपने आप ही करूँ। मैं ड्रांइग रूम में नहीं बैठ सकती, मेरे मेहमान नहीं बैठ सकते जबकि वहाँ का सब फर्नीचर साज–सामान मेरा अपना बनाया हुआ है और मैं किसी बेजान काठ की तरह देखी जाती हूँ।"[17]

यहां पर दमयन्ती के माध्यम से हम देख सकते है कि वह अपने ही घर में डर–डर के जीवन जी रही है। यह स्थिति समाज की घृणित मानसिकता को उजागर करती है। वह अपने बेटे–बहु के कारण ही जीवन से अलविदा लेकर हमेशा के लिए चली जाती है। जिस भारतीय समाज में मां को भगवान का दर्जा दिया जाता है, उसी समाज में उनका तिरस्कार करने में बच्चे जरा सा भी संकोच नहीं करते। वर्तमान समय में पैसों का महत्व पारिवारिक रिश्तों के ऊपर हो गया है। जब तक हमारे बुजुर्ग उपयोगी रहते हैं उनका भरपूर सम्मान होता है, अनुपयोगी होने पर उनको दरकिनार करने में भी समय नहीं लगता। बुजुर्गों की अपनी अलग दुनिया होती है, क्योंकि बच्चों के पास समय ही नहीं है कि जो उनकी दुनिया का हिस्सा बनें।

इसी के साथ–साथ हृदयेश का **'चार दरवेश'** उपन्यास भी बुजुर्गों की समस्याओं को उजागर करने वाला महत्वपूर्ण उपन्यास है। वृद्धावस्था की समस्या एक विकराल रूप धारण कर रही है। हृदयेश का जन्म 2 जलाई 1930 , शाहजहांपुर (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। इन्होंने हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में बहुत ख्याति अर्जित की। अपने साहित्य के माध्यम से समाज को एक आईना दिखाया। जिसके लिए हिन्दी जगत सदा इनका ऋणी रहेगा। **'चार दरवेश', 'गाँठ', 'एक कहानी अंतहीन', 'पुर्नजन्म'** आदि इनक महत्वपूर्ण उपन्यास हैं। जो समाज की विसंगतियों को उजागर करते हैं। इसी के साथ–साथ अपने कहानी संग्रह के माध्यम से इन्होंने पाठक वर्ग पर अपनी विशेष छाप छोड़ी। जिसको पढ़कर इनसे प्रभावित हुए बिना कोई रह ही नहीं सकता। हृदयेश को इनके कथा साहित्य के लिए **'पहल सम्मान'** और **'साहित्य भूषण सम्मान'** से नवाजा गया। हिन्दी जगत में इनका नाम बहुत ही आदर व सम्मान के साथ लिया जाता है। हृदयेश ने अपने कथा साहित्य में गरीब, आम जनता के स्वर को मुखर किया। गरीब, आम–जनता के कष्टों को इन्होंने महसूस किया और उनकी समस्याओं को बहुत ही प्रखरता के साथ अभिव्यक्त किया। **'चार दरवेश'** हृदयेश का अन्तिम उपन्यास था, जिसका सम्पादन रवीन्द्र कालिया ने किया था।

भारतीय समाज में ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी बुजुर्गों की समस्याओं में तेजी से बढ़ोत्तरी हो रही है। जैसे–जैसे संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ उसी के साथ–साथ वृद्धावस्था की समस्या बढ़ती गयी। हृदयेश के **'चार दरवेश'** उपन्यास में वृद्धावस्था की पीड़ा उभरकर सामने आयी है। चार बुजुर्ग चिन्तामणि शर्मा, दीलिपचन्द्र, रामप्रसाद, शिवशंकर एक नाले के पास बैकर अपने सुख–दुःख को साँझा करते हैं। जब तक बुजुर्ग उपयोगी होते हैं उनका सम्मान होता है, अनुपयोगी होने पर उनको निराशा हाथ लगती है। बच्चे अपने माता–पिता के साथ एक घर में रहना स्वीकार नहीं करते। बुजुर्ग अपने घर परिवार के लिए समस्या बनते जा रहे हैं। हृदयेश ने **'चार दरवेश'** उपन्यास के माध्यम से ऐसे ही चार बुजुर्गों की दारूण गाथा लिखी है, जो उपन्यास के मुख्य पात्र हैं। ये रोजाना तय समयानुसार एक स्थान पर मिलते और अपने जीवन के अनुभवों को साँझा करते हैं। जिन बच्चों को माता–पिता पाल पोषकर बड़ा करते हैं, किसी लायक बनाते हैं। स्वयं के पैरों पर खड़ा होने के काबिल बनाते हैं। वही बच्चे अन्त समय में मुख फेर लेते है, उन्हें बोझ समझने लगते हैं। उपन्यास में चिन्ताहरण नामक पात्र के माध्यम से देख सकते है कि उसका बेटा अपने किसी भी फैसले में पिता को शामिल करना जरूरी नहीं समझता – "एक ही घर में रहते हुए भी बेटा उनसे दूरी बनाए रखता था और वह भी उससे दूरी बनाये रखते थे। दोनों की स्थिति घड़ी की उन दो सुंइयों की भाँति थी, जो एक दूसरे से जुड़ी होने के बावजूद फासला बनाकर चलती है और बीच में कभी–कभी मिलती भी हैं तो यह मिलना न मिलना जैसा होता है।"[18] वहीं शिवशंकर नामक पात्र के माध्यम से वृद्धों के अकेलेपन की समस्या को रेखांकित किया गया है।

भौतिकता की दौड़ में पड़कर मानवता का स्तर दिन–प्रतिदिन गिरता जा रहा है। नैतिक मूल्य, मानवीय मूल्य केवल शब्द तक सीमित होते जा रहे हैं। हमें ये बात सदैव याद रखनी चाहिए कि हमारे माता–पिता ने हमारे लिए कितना कुछ किया है। उन्होंने हमारा पालन–पोषण किया, सदैव हमारा ख्याल रखा। फिर बड़े होकर हम ये बात क्यों भूल जाते हैं।

'चार दरवेश' उपन्यास में हम देख सकते हैं कि अकेलापन दूर करने के लिए ये चारों बुजुर्ग अपने आस–पास ही प्यार की तलाश करते हैं। आज बच्चे सिर्फ अपनी सुरव सुविधाओं का ख्याल रखते हैं। माता–पिता किस हाल में है इस बात से उनको कोई फर्क नहीं पड़ता। बुजुर्ग जब घर से हताश परेशान होकर अपने हमउम्र के लोगों के साथ समय व्यतीत करता है तो इस बात से भी बच्चों को तकलीफ होती है। रामप्रसाद जब अपने हमउम्र मित्रों से मिलने जाता या उनके साथ पुलिया पर बैठकर समय व्यतीत करता तो ये बात उसकी बेटी और जमाई को गँवारा न होती। तो वो लोग आये दिन उसका तिरस्कार करते और साफ तौर पर कह देते कि आप घर में ही रहा करिए। घर से बाहर जाकर लोगों से मिलने जुलने की आवश्यकता नहीं है।

अतः हम कह सकते हैं कि पुरातन समय में बुजुर्गों का भरपूर आदर सम्मान किया जाता था। उनको पलकों पर बैठाकर रखा जाता था और उनके अनुभवों से सीख ली जाती थी। जैसे–जैसे आधुनिकता बढ़ी, संवेदनायें समाप्त हो गयीं और बुजुर्ग घर के एक कोने में कैद होकर रह गए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण, 2010 , पृष्ठ सं०, 144

2. वही, पृष्ठ सं०, 162

3. साहनी, भीष्म, मेरी प्रिय कहानिया, राजकमल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, तृतीय आवृत्ति, 2017, पृष्ठ सं०, 13

4. वही, पृष्ठ सं०, 20

5. साहनी, भीष्म, हिन्दी कहानी संग्रह, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, संस्करण, 2010, पृष्ठ सं०, 269

6. वही, पृष्ठ सं०, 272.

7. वही , पृष्ठ सं०, 272

8. www.hindisamay.com/

9. www.hindisamay.com/

10.www.hindisamay.com/

11.राकेश, मोहन, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय आवृत्ति, 2015, पृष्ठ सं०, 40

12.वही , पृष्ठ सं०, 45

13.वही , पृष्ठ सं०, 50

14.सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पाचवां संस्करण, 2017 , पृष्ठ सं०, 18

15.वही , पृष्ठ सं०, 136

16.मुद्गल, चित्रा, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2019, पृष्ठ सं०, 17

17.हृदयेश, चार दरवेश, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2013 , पृष्ठ सं०, 20

उपसंहार

उपसंहार

हिन्दी साहित्य एवं वृद्ध विमर्श का सम्बन्ध बहुत गहरा है। साहित्य समाज को आईना दिखाने का काम करता है। सामाजिक समस्याओं को उजागर करता है। हिन्दी साहित्य में ऐसी कई कहानियाँ, उपन्यास, कवितायें हमारे सामने मौजूद हैं, जिनमें वृद्धों की समस्याओं को देख सकते हैं।

अगर बच्चों की देखभाल करना माता–पिता की जिम्मेदारी है तो बच्चों की भी ये जिम्मेदारी बनती है कि अपने माता–पिता का ख्याल रखें। लेकिन वही बच्चे अपनी जिम्मेदारी से मुंह फेर लेते हैं। जहां एक ओर माता–पिता अकेले रह जाते हैं वही बच्चों में इतनी भी क्षमता नहीं होती है कि अपने माता–पिता की देखभाल करें। बच्चे अपने बुजुर्गों को बोझ समझते हैं। बहुत अधिक ऊंचाइयों को पाने के बाद बच्चे अपने माता–पिता के साथ रहना पसन्द नहीं करते वे उन्हें वृद्धाश्रम में भेज देते हैं। उनका मानना है कि वे उनके साथ सामन्जस्य नहीं बिठा पायेंगे। बच्चे ये भी ख्याल नहीं रखते कि उनका अस्तित्व उनके माता–पिता की वजह से ही है। उन्हीं के त्याग और परिश्रम का फल है। बच्चे यह भी सोचने में असक्षम साबित होते हैं कि उनके माता–पिता को वृद्धाश्रम में कितनी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। वृद्धाश्रम में मनुष्य शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर हो जाते हैं और वृद्धाश्रम में रहने से वे समाज से भी पूरी तरह से कट जाते हैं। सभी की इच्छा होती है कि वे अपने परिवार सगे–सम्बन्धी से अपनापन पायें लेकिन वृद्धाश्रम में रहने वाले बुजुर्गों को इन सभी से दूर होना पड़ता है न ही उन्हें सामाजिक मुद्दों या समाज की जानकारी मिलती है।

वृद्धाश्रम सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों के बीच फंस कर रह गयी है। बीमारियाँ आयु बढ़ने पर बढ़ती ही रहती हैं। बुजुर्गों को शारीरिक देखभाल की अधिक जरूरत होती है। वो हमसे हमारा प्यार और सम्मान चाहते हैं और ये हमारी ही जिम्मेदारी बनती है कि उनकी इस अवस्था में जब उन्हें हमारी जरूरत है हम उन्हें अकेला न छोड़ दें। उन्हें हमारे आत्मिक सहयोग की आवश्यकता होती है। जो

उन्हें अपनी जिंदगी को बेहतर बनाने में मद्द देती है। उन्हें वृद्धावस्था में शारीरिक और मानसिक देखभाल की जरूरत होती है। कई बार अपने बिगड़ते हुए स्वास्थ्य की वजह से समाज से कट जाते हैं और उन्हें समाज से दूर होना पड़ता है। वो अकेले रहने को मजबूर हो जाते हैं और अपनी बीती हुई जिंदगी के बारे में सोचते रहते हैं। उनका दूसरों के प्रति लगाव और लोगों का उनके प्रति लगाव कम हो जाता है।

समाज बुजुर्गों को अपनी तरक्की में रूकावट मानता है। उन्हें लगता है कि उन्हें बुजुर्गों की अब कोई जरूरत ही नहीं है। वहीं जो लोग ऐसा कर रहे हैं वो कहीं न कहीं अपना भविष्य निर्माण कर रहे होते हैं क्योंकि बच्चे अपने माता–पिता से ही सीख रहे होते हैं। बड़े होने पर वे भी अपने माता–पिता के साथ ऐसा ही व्यवहार करते हैं। क्योंकि ऐसा कहा भी जाता है कि जैसा हम व्यवहार या जैसा कर्म करते हैं वही हमारे पास वापस आता है। जरूरत है हम सभी को इस बारे में सोचने की और समाज और परिवार के साथ रिश्ता बनाने की।

कई बार समय के साथ चीजे ठीक भी हो जाती हैं। शान्त मन से की गयी बात हर तरह की समस्या का समाधान दे देती है। जैसे कि हमारी संस्कृति में माता पिता को भगवान का दर्जा दिया जाता है। बच्चों का मौलिक कर्तव्य है कि वे अपने माता–पिता की देखभाल करें लेकिन बदलते समय के साथ सब कुछ बदल रहा बच्चे अपने माता–पिता का ख्याल नहीं रखना चाहते। उन पर पैसे नहीं खर्च करना चाहते न ही अपनी बातों को उनसे साँझा करना चाहते है। जब माता–पिता को यह एहसास होने लगता है कि उनका बच्चा जिसके लिए उन्होंने इतना तप–त्याग किया है। वहीं उनको महत्व नहीं दे रहा है बल्कि अन्य रिश्तों को ज्यादा सम्मान दे रहा है। तो इस वजह से मतभेद उत्पन्न हो जाता है। आपसी बातचीत न होने के कारण बात इतनी अधिक बढ़ जाती है कि न बच्चे माता–पिता से बात करना चाहते हैं न ही माता–पिता बच्चों के साथ रहने के लिए तैयार होते हैं। समय के बढ़ने के साथ ये दूरी इतनी अधिक बढ़ जाती है कि आपस में हाल–चाल भी नहीं लिये जाते।

हाँलाकि लोग बहुत से कारण बताते हैं कि वे क्यों अपने माता–पिता से दूर हुए। कई बार उनकी पत्नी परिवार के बुजुर्गों के साथ रहने में सक्षम नहीं है, या वो बहुत जल्दी गुस्सा हो जाते हैं या फिर उनके पास इतना समय ही नहीं है कि वे उनकी देखभाल कर सकें। जरूरत है तो सोचने कि उन्हें ही नहीं हमें भी उनकी बहुत जरूरत है लेकिन कई बार माता–पिता अकेले रह जाते हैं। अपनी खुशियों के लिए अपने बच्चों की तरफ देखते हैं लेकिन उन्हें उनका साथ नहीं मिलता निराशा ही हाथ आती है। कई बार एक साथ एक घर में रहते हुए भी उन्हें अपने बच्चों का प्यार नहीं मिलता। बच्चे यहां तक भी सोच लेते हैं कि उनके माता–पिता की वजह से उनका बहुत अधिक खर्चा हो रहा है। वे आर्थिक रूप से कमजोर हो रहे हैं इसलिए वे उनसे अलग रहने का फैसला ले लेते हैं लेकिन ये नहीं सोचते जब बचपन में उनके माता–पिता पर आर्थिक दबाव बनता था तो क्या उनके माता–पिता ने भी उनको ऐसे ही अपने से दूर कर लिया था?

जैसे कि बचपन में हमारे माता–पिता ने हमें पाला था। उसी तरह से वृद्धावस्था में उन्हें हमारी जरूरत होती है क्योंकि वृद्धावस्था में वे शारिरिक, मानसिक और आर्थिक रूप से कमजोर हो जाते हैं इसके बावजूद बच्चे अपने माता–पिता को छोड़ कर चले जाते हैं। बच्चों के पास दूसरों के लिए बहुत समय रहता है परन्तु अपने माता–पिता के लिए समय नहीं रहता। ऐसा इसलिए भी होता है कि हम दिखावे की दुनिया में इतना अधिक लिप्त हो जाते हैं कि हमें वास्तविकता दिख ही नहीं रही होती। धीरे–धीरे मूल्यों से इतने दूर हो जाते हैं कि सही गलत में फर्क ही नहीं कर पाते। माता–पिता के प्रति ये सोच बनाने लगते हैं कि उन्होंने ऐसा क्या रवास हमारे लिए किया है। ये तो हर माता–पिता अपने बच्चों के लिए करते हैं। ऐसा करना उनका फर्ज था जो उन्होंने पूरा किया है लेकिन यह भूल जाते हैं कि उन पर यह दबाव नहीं था कि वो अपनी खुशियों को भूलकर हमारी खुशी के लिए त्याग करते रहें। माता–पिता बच्चों की खुशियों के लिए अपनी तरफ से कोई भी कमी नहीं रखते। लेकिन वहीं बच्चे अपने माता–पिता के साथ रहने को तैयार नहीं होते।

बच्चों को जरूरत है कि वे अपने मूल्यों को हमेशा ध्यान रखें। सामाजिक बदलावो में वे खुद को इतना न बदलें कि सही–गलत में विभेद ही न कर पायें। सामाजिक, आर्थिक रूप से मजबूत होना बहुत अच्छा है लेकिन अपने मूल्यों को भुला देने में कोई समझदारी नहीं है और उनके साथ जिन्होंने हमें बनाने में अपनी पूरी जिंदगी लगा दी। हमारे बुजुर्ग हमारा प्यार और साथ चाहते हैं। कई बार वे खुद ही फैसला ले लेते हैं कि वे अपनी बाकी की जिन्दगी आराम से जहाँ पर उन्होंने अपनी जिन्दगी के इतने साल गुजार दिए हैं। जिनके बीच वे रहे हैं, उन्हीं के साथ रहने का फैसला करते है और अपने बच्चों के भविष्य को देखते हुए उन्हें उनसे दूर रहने की इजाजत दे देते हैं। बच्चे जिस तरह से जहाँ रहना चाहे रह सकते हैं। इस तरह की परिस्थिति में भी बच्चों को ये ध्यान रखना चाहिए कि उनकी गैरहाजिरी में भी उनके माता–पिता को किसी तरह की समस्या न हो। उनके स्वास्थ्य, उनके रहन–सहन और उनकी देखभाल करना बच्चों का ही कर्तव्य है। समय–समय पर अपने माता–पिता से मिलने आना उनके साथ सम्बन्ध बनाये रखना और कभी भी उनको अकेला महसूस नहीं होने देना बच्चों की ही जिम्मेदारी है। अगर सम्भव हो तो अपने माता–पिता के साथ ही रहना और अगर माता–पिता साथ जाने को तैयार न हों तो उन्हें विश्वास दिलाना कि माता–पिता का साथ उनके लिए बहुत जरूरी है।

अगर इसी के साथ–साथ दूसरे पहलू को देखा जाये कि किस तरह से माता–पिता अपने व्यवहार व रवैये की वजह से बच्चों के सामने इसके अलावा कोई रास्ता नहीं छोड़ते। जैसा कि हमें पता है कि हम सामाजिक प्राणी हैं। हम परिवारों में मिल–जुलकर रहते हैं, अपने माता–पिता की परवाह करते हैं। अंत समय तक उनकी देरवभाल करते हैं लेकिन आज के दौर में सामाजिक दायरा ऐसा बन गया है कि हम अपने रिश्तों और परिवार की परवाह नहीं करते। ऐसे लोग अपनी आवश्यकताओं और जरूरतों को किसी भी तरह पूरा करना चाहते हैं। वे अपने परिवार को समय नहीं दे पाते हैं। ऐसे लोग, जब शादियाँ करते हैं तब उनकी परेशानी बढ़ती जाती है। एक ओर जहां वे अपनी इच्छाओं को पूरा करने की होड़ में लगे होते हैं वहीं दूसरी ओर उनकी जिम्मेदारियां भी बहुत अधिक बढ़ जाती हैं।

जहां एक ओर बच्चे सभी पहलुओं को अपनी नजरों से देख रहे होते हैं वहीं माता–पिता अपने नजरिए में बदलाव करने को तैयार नहीं होते। इस कारण दोनों में मतभेद उत्पन्न हो जाता है और वे माता–पिता से इन कारणों की वजह से अलग रहने की सोचते हैं। जहाँ एक ओर बच्चे अपनी तरह से माता–पिता के बारे में सोच रहे होते हैं, लेकिन माता–पिता रुढ़िवादी विचारधारा के कारण बच्चे के प्यार को नहीं समझ पाते। उन्हें लगता है कि उनका बच्चा उनसे दूर हो गया है। इसके बावजूद कुछ बच्चे अपने माता–पिता का साथ देना चाहते हैं लेकिन उनके सख्त रवैये के कारण उनसे दूर हो जाते हैं। कई बार माता–पिता बच्चों के साथ आपसी सामन्जस्य न होने के कारण उनसे दूर हो जाते हैं। फिर उन्हीं बच्चों को अपने माता–पिता से दूर होना या माता–पिता को अपने बच्चों से दूर होना कष्टदायक लगता है।

बच्चे इस वजह से भी परेशान होते हैं कि वे दायित्वों का निर्वाह ठीक प्रकार से नहीं कर पा रहे हैं। कई दिनों तक परेशान रहते हैं। फिर भी अपने बुजुर्गों को अपने से दूर नहीं करना चाहते। उनका आदर–सत्कार करते हैं लेकिन माता–पिता को अपनी रूढ़िवादिता की वजह से उनका ये सम्मान भी ठीक नहीं लगता। इन परेशानियों को दूर करने के लिए जरूरी है कि बच्चों और माता–पिता के बीच बातचीत होना, एक दूसरे से अपने मन की बातों को साँझा करना। अगर ऐसा होता रहेगा तो उनके बीच दूरियों का जो कारण होता है वो दूर होता रहेगा।

जहाँ एक ओर भौतिक सुरव–सुविधा प्रदान करने के लिए वे अपने बच्चों को समय नहीं दे पाते और उनका बच्चों के साथ प्यार वाला रिश्ता मजबूत नहीं हो पाता। वहीं बच्चों का अपने माता–पिता के प्रति लगाव कम हो जाता है। जब बुजुर्गों को अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने के बाद अपने बच्चों की जरूरत पड़ती है, बच्चे वह प्यार जिसके माता–पिता हकदार होते हैं नहीं दे पाते हैं क्योंकि जब उन्हें माता–पिता की जरूरत थी, उनके लगाव की आवश्यकता थी। तब वे उनके साथ नहीं थे। इस कारणवश बच्चे अपने माता–पिता को वृद्धाश्रम में भेजने से भी नहीं हिचकिचाते। ऐसा इस वजह से भी होता है कि उनके बीच बात करने का समय ही नहीं होता, लेकिन बच्चों को ऐसा नहीं करना चाहिए क्योंकि उन्हें यह भी ध्यान

देना चाहिए कि उनकी सुख–सुविधाओं की पूर्ति के लिए ही माता–पिता ने अपनी आवश्यकता और अपनी खुशियों की परवाह नहीं की।

बच्चे अपने माता–पिता को वृद्धाश्रम में इसलिए छोड़ आते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि ये उनके लिए बोझ हैं और बच्चों के पास उनके लिए समय नहीं होता। मतलब वो अपनी नौकरी और अपने अच्छे भविष्य के लिए भागते रहते हैं लेकिन बच्चे ये भूल जाते हैं कि उन्हें अपना भविष्य अच्छा करने का हुनर किसने दिया, उन्हें इस लायक किसने बनाया। कुह मामलों में ऐसा भी होता है कि माता –पिता बच्चों पर बोझ नहीं बनना चाहते और वृद्धाश्रम में रहने का फैसला लेते हैं। न ही बच्चे अपने माता–पिता को समय दे पाते और उनकी देखभाल करने में असक्षम होते हैं। अपनी जिदंगी को और अधिक बनाने में घर के बुजुर्ग दरकिनार कर दिए जाते हैं। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति भी समय पर नहीं की जाती। कई बार तो बच्चे उनके इलाज में पैसे लगाने से भी हिचकिचाते हैं। बच्चे अपने ही माता–पिता का ख्याल नहीं रख पाते। जिन्होंने उनका कितना ख्याल रखा था, पाला था। कई तरह की खुशियों को अपने बच्चों के लिए कुर्बान किया था। अपनी मेहनत की कमाई को अपने बच्चों की जरूरतों पर खर्च कर देते हैं। अपने सेवानिवृत्त हो जाने के बाद का भी नहीं सोचते लेकिन उन्हीं बच्चों को माता–पिता एक बोझ लगने लगते हैं।

कई बार ऐसा होता है कि वृद्धाश्रम में बुजुर्ग अपने बच्चों से मिलने के लिए बहुत व्याकुल होते हैं, उन्हें विश्वास होता है कि उनके बच्चे उन्हें वापिस लेकर जायेंगे। बच्चे अपने माता–पिता को उस वक्त छोड़ देते हैं जब उन्हें उनकी बहुत अधिक जरूरत होती है। कुछ बच्चे परिवार की सहायता के लिए बाहर रहते हैं या विदेशों में जाकर रहते हैं। सभी को ये बात स्वीकार्य होती है लेकिन उसी शहर में रहकर अपने बुजुर्गों को ऐसे वृद्धाश्रम में छोड़ देना, अपनी बाकी की जिन्दगी बिता देने के लिए ये कैसी समझदारी है। ऐसे बच्चों को भी ध्यान रखना चाहिए कि समय कभी रूकता नहीं है उन्हें भी बूढ़ा होना है और उन्हें भी अपनी खुशी के लिए अपने बच्चों की तरफ देखने की जरूरत पड़ेगी।

वहीं एक ओर बच्चे अपने माता–पिता का ख्याल इसलिए भी रख रहे होते हैं क्योंकि उन्हें उनकी जायदाद और पैसे चाहिए होते हैं। बच्चों को अपने बुजुर्गों की देखभाल इन वजहों से नहीं करनी चाहिए। उनके प्रति अपने कर्तव्यों का हमेशा ध्यान रखना चाहिए। वहीं दूसरी ओर बुजुर्ग अपने घर के बच्चों का हमेशा साथ देते हैं ताकि घर सुचारू रूप से चल सके। बच्चे अपनी सुख–सुविधाओं में व्यस्त रहते हैं। उनके पास अपने ही बच्चों का ख्याल रखने का समय नहीं रहता है। उस वक्त भी दादा–दादी ही उनके बच्चों का ख्याल रखते हैं। उसके बावजूद भी बच्चे अपने बुजुर्गों को बोझ समझते हैं। उन्हें लग रहा होता है कि वृद्धाश्रम में उनकी अपेक्षा अधिक ख्याल रखा जाये।

जैसे कि अगर एक व्यक्ति दिन–रात काम कर रहा है। घर आने पर इतना थका होता है कि वो बात भी नहीं करना चाहता। वहीं दूसरी ओर माता–पिता अकेलापन महसूस करने लगते हैं। माता–पिता अपने हम उम्र के साथ रहकर अपना सुख–दुःख बाँटने लगते हैं, बढ़ती उम्र के साथ –साथ बुजुर्ग कई प्रकार के शारीरिक रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। उनका घर पर अकेले रहना भी ठीक नहीं रहता है क्योंकि ये बीमारियां किसी भी वक्त बहुत अधिक बढ़ जाती हैं ऐसे वक्त में किसी का उनके साथ होना जरूरी हो जाता है। इस वजह से भी कई बार उन्हें बच्चे वृद्धाश्रम भेज देते हैं कि उनका वहाँ सही से ख्याल रखा जायेगा किन्तु सभी बच्चे अपने माता–पिता को वृद्धाश्रम में नहीं भेजना चाहते। अपनी और अपने परिवार की जिन्दगी में सामन्जस्य बनाने के लिए भी कई बार ऐसा किया जाता है। जैसा कि कई बार देखा जाता है कि दवा दिलाने के लिए, उनके पास बैठने के लिए, बच्चों के पास टाइम ही नहीं होता।

आमतौर पर बुजुर्गों की यही समस्या है कि जीवन की सांध्य बेला पर उन्हें अकेला छोड़ दिया जा रहा है। हॉलाकि कुछ बुजुर्ग खुद ही अपने परिवार की सुख–शान्ति बनाये रखने के लिए यह कदम उठाते हैं। जिससे उनके कारण उनके बच्चों की जिंदगी में कोई दिक्कत न आये।

सामाजिक बदलाव का बुजुर्गों को भी बहुत अधिक सामना करना पड़ रहा है। कई बार बदलते मौहाल के कारण भी कई लोग बच्चों से दूर हो जाते हैं। बच्चे देश–विदेशों में अपने सपनों को पूरा करने के लिए जाते हैं। इस समय माता–पिता अपने बच्चों के लिए बहुत सहायक हैं और बच्चों को ऊँचाइयों पर पहुँचता देख बहुत खुश होते हैं। अपने बच्चों की खुशी में अपनी खुशी देखते हैं। उनकी खुशियां अपने बच्चों के साथ जुड़ी होती है। ऐसे में माता–पिता को अपने बच्चों के साथ दुनियाँ देखने का भी मौका मिलता है। जो चीजे उन्हें अपने परिश्रम के दिनों में नहीं मिली होती हैं। कई बार बच्चों और माता–पिता में दूरियां इस वजह से आती है कि कोई एक पक्ष भी अपनी सोच को बदलने को तैयार नहीं होता। उन्हें अपना पक्ष बहुत अधिक मजबूत लग रहा होता है। न ही उनका मन स्वीकार करता है और न ही चीजों को अपनाना चाहता है। बच्चों को यह समझने में कि उन्हें भविष्य और रिश्तों के बीच में क्या चुनना है अगर वे भविष्य के बारे में सोच कर माता–पिता से दूर होते हैं तो यह समाज उनके बारे में क्या सोचेगा? क्या यह फैसला उनके लिए सही होगा? जरूरत है तो आपस में बैठकर बात–चीत करने की फैसला लेने की चीजों को किस तरह से देखा जाये क्या किया जाये।

बदलते समय के साथ–साथ लोगों की सुविधायें भी बढ़ी हैं। अब लोगों के पास बहुत अधिक सम्भावनायें हैं कि वे अपनी वृद्धि हर तरह से कर पा रहे हैं। इस वजह से लोग अपने सपने पूरे करने की होड़ में लगे हुए हैं। कहीं न कहीं इस कारण की वजह से वे संगठित परिवार से अलग होकर एकल परिवार में रह रहे हैं और अपने माता–पिता से भी अलग घर लेकर रह रहे हैं। सामाजिक परिवर्तनों के कारण बुजुर्गों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है।

हमें इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि बुजुर्ग हमारे समाज के लिए और परिवार के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। हमें उनका हमेशा सम्मान करना चाहिए, उन्हें भरपूर प्यार देना चाहिए। जीवन के अंतिम समय में उनका साथ छोड़ना नहीं चाहिए बल्कि कदम से कदम मिलाकर चलना चाहिए। हमारे बुजुर्ग हमारी नींव है। उनके अनुभवों से सदैव सीरव लेनी चाहिए किन्तु होता इसके विपरीत है। हम उन्हें उस समय अकेला छोड़ देते हैं, जब उन्हें हमारी सबसे अधिक जरूरत होती है। वो

उस वृक्ष के समान हैं जो अपना पूरा जीवन हमें छाया देने में लगा देते हैं। स्वयं कष्ट में रहकर हमारे सुखों का ध्यान रखते हैं। तो ऐसे समय में हमारी ये जिम्मेदारी बनती है कि हम उनका पूरा ख्याल रखें।

जीवन का अंतिम पड़ाव वृद्धावस्था है। वृद्धावस्था वह अवस्था है जिसमें ज्ञान का भण्डार होता है, अनुभवों का खजाना होता है। व्यक्ति अपना पूरा जीवन अपने परिवार और बच्चों के लिए समर्पित करने के बाद इस अवस्था में पहुंचता है। परन्तु हम अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उनकी कद्र नहीं करते।

अतः हम कह सकते हैं कि अब वह समय आ गया है कि हम स्वयं में ये विचार करें कि जो अपना पूरा जीवन हमारे लिए समर्पित कर देते हैं। हम उन्हीं की अवहेलना कर रहे हैं। तो क्या कभी हमने ये सोचा है कि जैसा बीज बो रहे हैं, एक दिन हमें भी वही फल काटना है। अंत में मैं बस यही कहना चाहूंगी कि वृद्धावस्था आपसी सहयोग और सामन्जस्य की अवस्था है। जिस पड़ाव से एक दिन हर एक व्यक्ति को गुजरना है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ –

1. मुद्गल, चित्रा, गिलिगडु, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली , संस्करण, 2019।

2. सिंह, काशीनाथ, रेहन पर रग्घू, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, पाँचवा संस्करण, 2017।

3. सोबती, कृष्णा, समय सरगम, राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली, दूसरी आवृत्ति, 2014।

4. ह्दयेश, चार दरवेश, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, दूसरा संस्करण, 2013

सहायक ग्रंथ –

1. अग्रवाल, पवन, हिन्दी कहानी दर्पण, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 2012

2. झुनझुनवाला, दीनदयाल, वृद्धावस्था की समस्या एवं समाधान, पिलग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2009

3. राकेश, मोहन, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय आवृत्ति, 2015

4. साहनी, भीष्म, मेरी प्रिय कहानियाँ, राजकमाल एण्ड सन्ज, नई दिल्ली, तृतीय आवृत्ति, 2017

5. साहनी, भीष्म, हिन्दी कहानी संग्रह, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, संस्करण, 2010

6. सिंह, वी. एन., जनमेजय सिंह, नगरीय समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015

7. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण, 2010

पत्रिकायें –

- जनकृति , अगस्त, 2015
- वागर्थ, जुलाई, 2013

वेबसाइट –

- http:// premchand.kahaani.org/2010/12 boodhi.kaki.html?m=1
- http://premchand.kahaani.org/2006/03/blog-Post-11417883454171172. html?m=1
- https://www.hindisahityadarpan.in/2016/07/beton-wali-vidhwa-story-premchand- html?m=1
- http:// deshajman.blogspot.com/2019/06/ blog-post-18.html?m=1
- http:// hindudiaspora.blogspot .com /2018/01/7510211834-seema.html?m=1
- http:// rishabhuvach.blogspot.com/2016/06/ blog-Post.html?m=1
- www.hindisamay.com